सहजोबाई की सद्गुरु-निष्ठा

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ |
गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ ||
हरि ने जन्म दियौ जग माहीं |
गुरु ने आवागमन छुटाहीं ||
हरि ने पाँच चोर दिये साथा |
गुरु ने लई छुटाय अनाथा ||
हरि ने रोग भोग उरझायो |
गुरु जोगी करि सबै छुटायो ||
हरि ने कर्म-मर्म भरमायो |
गुरु ने आतम रूप लखायो ||
फिरि हरि वध मुक्ति गति लाये |
गुरु ने सब ही भर्म मिटाये ||
'चरनदास' पर तन-मन वारूँ |
गुरु न तजूँ हरि को तजि डारूँ ||

अनुक्रमणिका

विषय-सूची	पृष्ठ- संख्या
१ विशुद्ध भाव-दान ही 'गुरु-दीक्षा'	०३
२ क्रांति-यात्रा द्वारा ब्रज के पर्वत 'आदिबद्री व कनकाचल'	०६
३ प्रेम की प्रगाढ़ता 'महाभाव'	०७
४ अर्थ में छिपा 'अनर्थ'	११
५ जीवन-सार 'श्रीकृष्ण-संस्मरण'	१४
६ साक्षात् गोविन्दाराधन 'गौ-सेवा'	20
७ परम कृपामय 'कृष्णावतार'	२१
८ सच्चे ब्रजोपासक संत 'श्रीसखीशरणजी'	२५
९ ब्रज-वसुंधरा के परम प्रेमाराधक संत	२६

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा

सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकाले व मासिक, त्रेमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवा द्रव्य किसी विश्वसनीय गौ सेवा प्रकल्प को दान कर गौ-रक्षा कार्य में सहभागी बन अनंत पुण्य का लाभ लें | हिन्दू शास्त्रों में अंश मात्र गौ सेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

संरक्षक- श्रीराधामानबिहारीलाल

प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान,
गह्वरवन बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
(Website :www.maanmandir.org)
(E-mail :ms@maanmandir.org)
mob. : 9927338666, 9837679558

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

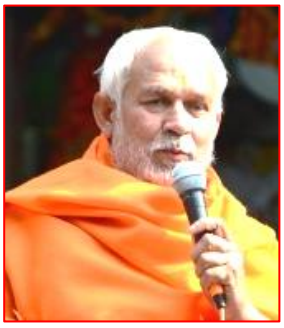

भगवत्प्राप्ति में 'गुरुजनों' की महती अनुकम्पा ही एकमात्र सहायक होती है | 'जीव' अनादि-अभ्यास अथवा संस्कारों के वशीभूत भवाटवी में निरन्तर अनन्त कष्टों को भोगने के लिए बाध्य रहता है | 'करुणानिधान भगवान्' जिस तरह जीव-कल्याण के लिए सतत अपनी भुजा फैलाए खड़े रहते हैं, उसी भाँति 'सद्गुरु' भी कृपाकातर बने रहते हैं |

एक 'महापुरुष' कहीं अवतरित होता है परन्तु सम्पूर्ण जगत की मंगलकामना करता हुआ उसे 'भगवत्प्रेम की पावन-सरिता' में स्नान कराता है; ऐसा ही ब्रज की एक दिव्य विभूति परम विरक्त संत पूज्य 'श्रीरमेशबाबा' के कृतित्व व व्यक्तित्व से प्रतिभाषित होता है, जिन्होंने प्रयाग में जन्म लेकर अल्पायु में गृहत्याग और फिर अखण्ड ब्रजवास का संकल्प लेकर अपने को 'ब्रजवासियों' की सेवा में समर्पित कर दिया; गाँव-गाँव में 'भगवन्नाम-प्रभातफेरियों' के माध्यम से घर-घर भक्तिरस की धारा प्रवाहित कर दी | 'निष्काम करुणा' ने बाबामहाराज को सबका 'अपना बाबा' बना लिया | ४० हजार से अधिक गाँवों में आज भी भगवन्नाम का जयघोष हो रहा है | 'गुरुदेव' हों तो ऐसे जिन्होंने ७० वर्षों की लम्बी अवधि में एक भी शिष्य नहीं बनाया और बन गए करोड़ों शिष्य |

'गुरु पूर्णिमा' के अवसर पर हजारों भक्तों ने अपनी भावाभिव्यक्ति को एक 'नाटिका' के मंचन के माध्यम से प्रस्तुत कर यह सिद्ध कर दिया कि 'गुरु-भक्ति' क्या होती है |

आज हजारों 'साधक-साध्वियाँ' आपके दिखाए हुए मार्ग के माध्यम से जनकल्याण में लगे हैं | 'गुरुजनों की भावना' को पोषण ही सच्ची 'गुरु-भक्ति' है |

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

विशुद्ध भाव-दान ही 'गुरु-दीक्षा'

"संप्रदीयते यस्मिन् सः सम्प्रदायः"

जिसमें सम्यक् वस्तु (अध्यात्म, सद्वस्तु) को प्रदान किया जाए, वह है 'सम्प्रदाय'।

सम्प्रदायों में दीक्षाविधान इसलिए नहीं था कि हम भेदबुद्धि में पड़कर विभक्त हो जाएँ।

दीक्षा क्या है? 'दिव्य भाव' का दान ही दीक्षा है।

दिव्यं भावं यतो दद्यात् क्षिणोति दुरितानि च।
अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वारम्भ विशारदैः॥

(नारद पुराण ६४/२)

गुरुदेव दिव्य भावों का दान करते हैं, जिनसे पाप की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। इन दिव्य भावों के स्थान पर यदि गुरु ने संकीर्ण विचार दे दिये तो समझो विष दे दिया। आजकल अधिकतर 'भाव' के स्थान पर 'अभाव-दान' हो रहा है। अभाव कलि का रूप है। परम रस-रसिक श्रीहिताचार्यजी ने कलि-कालुष्य को नष्ट किया।

हरी सब कलिकाल की भय कृपा रूप जू वपु धर्‌यो॥

(श्रीहित मंगल गान प्रकरण१२/२)

आज हम भेदोत्पन्न करके यदि कलहादि कलि-कालुष्य को बढ़ाते हैं, तो क्या यही आचार्यों का अनुगमन है?

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते।

(श्रीभागवतजी ११/२१/२०)

क्लेश, क्रोध – ये सब कलि के ही रूप हैं, अतः एकाग्र मन से विचार करके विवेकमयी बुद्धि के द्वारा विशुद्ध भक्तिमय सिद्धान्त पर ही चलें। समग्र संसार ही गुण-दोषमय है, अतः सारासार का ज्ञान परमावश्यक है।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

(श्रीरामचरितमानसजी, बालकाण्ड - ६)

साधक को हंस की तरह नीर-क्षीर का विवेक होना आवश्यक है, जिससे ग्राह्य का ग्रहण कर सके एवं त्याज्य का त्याग कर सके। यह गुण परीक्षितजी के अन्दर था –

नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक्।
कुशलान्याशु सिद्ध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत्॥

(श्रीभागवतजी १/१८/७)

भ्रमरवत् सारग्राही राजा परीक्षित ने पापमय कलि में कोई दोष न देखकर एक महान गुण देखा कि सत्कर्मों की सिद्धि अति शीघ्र (मन से संकल्प करने मात्र से) होती है, अतः कलिकाल में आराधना (संकीर्तन) की विशेष महिमा है।

इसी प्रकार साधक को आराधना के लिए सम्प्रदाय-परम्परा का ग्रहण एवं संकीर्णता के विष का त्याग करना चाहिए। आज एक-दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा, आचार्य-निन्दा, आचार्य वाणी-निन्दा जैसे घोर अपराध ने सम्पूर्ण वैष्णव-समाज को तेजहीन, शक्तिहीन व श्रीहीन कर दिया है।

रोगी को पथ्य (औषधि-सेवन) आवश्यक है लेकिन कुपथ्य का निवारण उससे कहीं अधिक आवश्यक है। अतएव श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने कहा –

"विरोधिनो रूपमथापि ज्ञेयम्" (दशश्लोकी)

विरोधी तत्व का ज्ञान परम आवश्यक है।

इसीलिए रामचरित्र छोड़कर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने सर्वप्रथम गुण-दोष का वर्णन किया –

तेहि तें कछु गुन दोष बखाने।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥

(श्रीरामचरितमानसजी, बालकाण्ड - ६)

साधक को बहुत चतुर होना चाहिए।

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥

(श्रीरामचरितमानसजी, अयोकाण्ड - २८१)

अमृत जैसी वस्तु तो केवल सुनने को मिलती है और विष जैसी वस्तु सर्वत्र प्रत्यक्ष देखने को मिलती है। इसी प्रकार कौए, उल्लू और बगुले तो सर्वत्र ही देखे जाते हैं परन्तु हंस तो एक मानसरोवर में ही पाए जाते हैं। उपासक इतना चतुर हो कि स्वयं को विषपान से बचा सके अन्यथा सुधा के स्थान पर गरलपान ही करेगा व हंस के स्थान पर काक को गुरु बनाकर अपवित्र वस्तुओं का सेवन, बक को गुरु बनाकर पाखण्ड एवं उलूक को पथ-प्रदर्शक बनाकर दुरत्यय अन्धकार में ही प्रवेश करेगा।

राजा सत्यव्रत मनु के वचन –

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः । त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ (श्रीभागवतजी ८/२४/५१)

संसार में ऐसे पथ-प्रदर्शक ही अधिक मात्रा में हैं, जिनका आशय दुरत्यय अन्धकार में ले जाने वाला है; लक्ष्य था भगवद्प्राप्ति का, परिणाम में अनन्त दूरी को प्राप्त हो गये - **"आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास ।"**

अथवा

चलन-चलन सब कोई कहे विरला पहुँचे कोय ।
एक कंचन और कामिनी दुर्गम घाटी दोय ॥

चले थे भगवद्रस की प्राप्ति के लिए और पहुँच गये ममाहं-मति के अँधेरे कुँए में ।

ऐसे पथप्रदर्शकों की सर्वत्र निन्दा की गयी है ।

श्रीबिहारिनदेवजी की वाणी में –

जाकौ गुरु भसकै भुसै सिषि तौंतरा खाइ ।
नाज खात मुंहुं मारियै ए दोउ पसु प्राइ ॥
ए दोइ पसु प्राइ भाइ बिनु भटकि भये खर ।
सनमुख ह्वै क्यौं सकैं डरैं बरनाश्रम के डर ॥
कहत बिहारी दास मैंड मीडै ही साकौ ।
रसिक अनन्य कहाइ कहै न सभा जस जाकौ ॥

(श्रीबिहारिनदेवजी कृत वाणी, पद सं. ९०)

ऐसे गुरु भुस-भक्षी गधा एवं शिष्य कीट-भक्षी पशु हैं ।

'हंस' जैसे गुरु तो भगवत्कृपा से ही प्राप्त होते हैं जिनके आश्रय में शिष्य विशुद्ध भक्ति का दुग्धपान करता है ।

क्या कारण है जो 'सनातन धर्म' सबसे प्राचीन होने के साथ-साथ विश्वपूज्य था, आज उँगली पर गिनती के सनातन धर्मावलम्बी रह गये ।

कारण – 'उपदेष्टा' ही विषमता का विष पिलाने लग गये । यह 'संकीर्ण उपदेश' आज जन-साधारण को दुरत्यय अंधकार में ले जा रहा है ।

संकीर्ण उपदेशकों से सावधान !

राजा सत्यव्रत मनु के मत्स्य भगवान् के प्रति वचन –

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः । तथापि लोको न भवन्तमन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥

(श्रीभागवतजी ८/२४/५२)

हे प्रभो ! सम्पूर्ण संसार के सुहृद (हितैषी) प्रिय, ईश्वर, आत्मा ही नहीं अपितु गुरु एवं ज्ञान भी आप ही हो ।

लक्ष्मणजी के रामजी के प्रति वचन –

गुर पितु मातु न जानउँ काहू ।
कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥

(श्रीरामचरितमानसजी, अयोध्याकाण्ड - ७२)

हे नाथ ! मैं सहज स्वभाव से कह रहा हूँ कि आपके अतिरिक्त गुरु, माता, पिता किसी को मैं नहीं जानता हूँ । 'परार्थनिष्ठा' तो कहीं दिखाई ही नहीं देती । गुरु भी अपने शिष्य से आशा करता है, लोभ करता है ।

श्रीप्रह्लादजी के शब्दों में –

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥

(श्रीभागवतजी ७/१०/५)

आशा करने वाला न सच्चा गुरु है न ही उपदेष्टा, एक अच्छा व्यापारी अवश्य हो सकता है ।

जो गुरु करै शिष्य की आस ।
श्याम भजन ते भया उदास ॥

(श्रीबिहारिनदेवजी की वाणी-१४)

गुरु निर्मोही चाहिए, शिष्य न छाँड़ै पास ।

(श्रीबिहारिनदेवजी)

स्वार्थ की भावना से संकीर्णता ही सिद्ध हो सकती है, भक्ति तो नहीं । ऐसे 'गुरु' जो तुम्हें संकीर्ण-विचारों का विष पिला रहे हैं उनका वरण करने से तो अच्छा है, 'गुरु' मत बनाओ । जब तक सच्चे सद्गुरु न मिलें तब तक भगवान् को ही गुरु-रूप में स्वीकार करो अन्यथा जहर पिलाने वाले तो बहुत मिल जाएँगे । सभी जीवों के सच्चे हितैषी एकमात्र 'श्रीभगवान्' ही हैं ।

उमा राम सम हित जग माहीं ।
गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाहीं ॥

(श्रीरामचरितमानसजी, किष्किन्धाकाण्ड -१२)

अथवा

स्वयं भगवान् श्रीराम ने कहा –

गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा ।

सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥

(श्रीरामचरितमानसजी, अरण्यकाण्ड - १६)

गुरु, माता, पिता, बन्धु, पति, दैवादि सभी सम्बन्ध मुझ में ही स्थापित कर लो।

इस प्रसंग को समझने के लिए एक परम सत्य व प्रेरणादायी घटना है – जिस समय श्रीगुरुदेव के द्वारा वृन्दावन छोड़ देने की आज्ञा पर 'श्रीभगवतरसिकजी महाराज' प्रयाग के निकट अड़ैल ग्राम के समीप मढ़ी में निवास कर रहे थे, उस समय किन्हीं सन्तजी के द्वारा श्रीभगवतरसिकजी की वाणी को पढ़ते हुए 'गुरु श्रीललितमोहिनीदेवजी' का मन बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु जब निम्नलिखित पद का क्रम आया –

चेला काहू के नहीं गुरु काहू के नाहिं।
सखी लड़ैती लाल की रहैं महल के माहिं ॥
रहैं महल के माहिं टहल सब करैं निरन्तर।
दंपति अति अकुलाहिं पलक कहुँ परै जु अंतर ॥
भगवत भगवत कहैं करैं नहिं हम बिन केला।
ताते हम परिहरे देह मानी गुरु चेला ॥

(श्रीभगवतरसिक जी की वाणी- उत्तरार्द्ध.पद सं.४०)

यह पद सुनकर गुरुदेव का मन कुछ सकुचाया। अन्य किसी को दिखाने, सुनाने का साहस भी नहीं हुआ। प्रातः (जिस भी भावना से प्रेरित होकर) वह पद यमुना में प्रवाहित कर दिया किन्तु सत्य के प्रवाहित होने से मन व्यथित हो उठा। दूसरे दिन यमुना-स्नान को गये तो नीली धारा में बहता हुआ वह पत्र पुनः इस प्रकार सामने आ गया मानो किसी ने लाकर रख दिया हो, आश्चर्य के साथ ही मन की दुविधा भी बढ़ गयी। पत्र को ले आता हूँ तो समाज में कटु-सत्य को स्थापित करना होगा और यदि नहीं लाता हूँ तो सत्य का अनादर है तो भी पत्र को जल में डुबा ही दिया, तीसरे दिन भी वही क्रम रहा पुनः वह पत्र देखकर विचार करने लगे, न भीगता है और न डूबता ही है। तब स्वयं श्रीयमुनाजी ने प्रकट होकर कहा – "हे आचार्य प्रवर ! इस पत्र में सत्य की अग्नि है, जिसे पचाने की सामर्थ्य मुझमें भी नहीं है। आप इसे ले जाइए, इसके प्रचार-प्रसार से रसिकजनों का कल्याण होगा। सत्य कटु भी हो तो क्या, वह सर्वदा स्वीकार करने योग्य है। सत्य को स्वीकार करना व कराना महापुरुषों का ही कार्य है।" श्रीयमुनाजी की आज्ञा से श्रीललितमोहिनीजी ने वह पत्र अपने हृदय से लगा लिया एवं शिष्यों को प्रचार-प्रसार का आदेश दिया।

इसी का अग्रिम पद है –

हम सिष स्यामा स्याम के गुरु हम स्यामा स्याम।
ओत प्रोत अरपन कियो निज मन तनु धन धाम ॥

(भगवतरसिकजी की वाणी)

हम शिष्य भी श्यामा-श्याम के हैं और गुरु भी श्यामा-श्याम के। वस्तुतः सम्बन्ध गुरु-शिष्य का हो अथवा पिता-पुत्र का वह भगवान् में जितना घटित होता है, उतना अन्यत्र नहीं, यही तो अनन्य व्रत है।

'सच्चे गुरुजनों का स्वरूप' स्वयं श्रीभगवतरसिकजी ने बताया है – **गुरु वही जो विपिन बसावै |**
गुरु वही जो संत सेवावै, गुरु वही जो हरिहि मिलावै ||

श्रीभगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम, धामी, जन इत्यादि में सुदृढ़ निष्ठा व साक्षात् उसकी प्राप्ति कराने वाले ही वास्तविक गुरु हैं |

अतः कथनाशय है कि विशुद्ध भक्त के 'दर्शन-स्पर्श व वचन-श्रवण रूपी सत्संग' से सहज ही विशुद्ध भक्तिमय भाव का जन-जन में प्रचार-प्रसार हो जाता है।

भक्तिमार्ग पर चलने के लिए हमलोगों को 'भक्ति के मूल सिद्धान्तों' को जानना ज्यादा जरूरी है, इनके समझे बिना हम बहुत जल्दी गिर जायेंगे; अतः आत्मपतन से बचने के लिए सदा सत्संग (कथा-कीर्तन) कहते-सुनते रहना चाहिए, क्योंकि भक्ति (भगवत्प्रेम) के निर्विघ्न नित्य-निरन्तर बढ़ाने का एकमात्र यही (भगवान् व भक्तों की लीला-चर्चा करना) सबसे बड़ा सरल-सहज-सरस साधन (उपाय) है |

नृत्य-गान करने वाले भक्तजनों का दर्शन करने मात्र से कल्याण हो जाता है, सामूहिक संकीर्तन में अवश्य रहना चाहिए, वहाँ सभी भक्तों के एक साथ सहज दर्शन हो जाते हैं |

क्रांति-यात्रा द्वारा ब्रज के पर्वत 'आदिबद्री व कनकाचल' को खनन-मुक्त कराने की अंतिम लड़ाई का आगाज

(महापूजन व ब्रज-रक्षण यज्ञ करके साधु-संतों व ग्रामवासियों ने ब्रज के पर्वतों को बचाने की खाई सौगंध)

ब्रज के पर्वत कनकांचल व आदिबद्री को खनन-मुक्त कराने के लिए चल रहे धरने के १६९ वें दिन साधु-संतों, ग्रामवासियों व आंदोलनकारियों ने इस आंदोलन की अंतिम लड़ाई, 'क्रांतियात्रा' का महापूजन व ब्रजरक्षण-यज्ञ करके शुरुआत की। भरतपुर की नगर व पहाड़ी तहसील में से होकर निकलने वाली ११ दिवसीय इस यात्रा में ब्रजक्षेत्र के पर्वत कनकाचल व आदिबद्री को खनन-मुक्त कराने के लिए आंदोलनकारियों द्वारा अंतिम प्रहार माना जा रहा है। आंदोलनकारियों का कहना है कि अगर इन ११ दिवसों में सरकार उनकी बात नहीं मानती है तो वह 'आमरण-अनशन' के साथ-साथ 'आत्मदाह' के लिए भी प्रेरित हो सकते हैं, ब्रज के पर्वतों की लड़ाई अब अंतिम चरण में है, 'अब करो या मरो' की स्थिति में हैं। प्रशासन व सरकार दोनों सब कुछ समझते व देखते हुए भी मूक दर्शक बनकर इन दिव्य पर्वतों को नष्ट होने दे रही है। आज आंदोलन को १६९ दिन के करीब हो गए हैं व सरकार के समस्त अधिकारियों को आंदोलन की सभी गतिविधियों के बारे में पूर्णतया मालूम है, आश्वासन भी दिए गए हैं लेकिन साथ में ही खनन-माफिया भी बेखौफ होकर दोनों पर्वतों को नष्ट करने पर उतारू हैं। अब और कोई चारा नहीं बचा है, या तो सरकार इन दोनों पर्वतों को खनन-मुक्त कर 'संरक्षित वन' घोषित करे, अन्यथा इस बार राजस्थान की सरकार को कई साधु-संतों की 'आमरण-अनशन' के चलते मौत का जिम्मेदार होना होगा। ग्राम अलीपुर में आयोजित हुई सभा के दौरान राधाकांत शास्त्री ने सरकार को स्पष्ट चेतावनी देते हुए कहा कि राजस्थान के मुख्यमंत्री को साधु-संतों का भरोसा नहीं तोड़ना चाहिए, उन्होंने हमें भरोसा दिलाया था कि वह शीघ्र ही हमारे आराध्य पर्वत 'कनकाचल व आदिबद्री' को खनन-मुक्त करेंगे लेकिन ४ महीने के करीब व्यतीत होने के बाद भी ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह इन पर्वतों के रक्षण के लिए तैयार नहीं है व राजनीतिक दबाव में या फिर किसी और प्रभाव में वह इन दोनों पर्वतों को खत्म होने के पक्ष में है। यह देखते हुए इस यात्रा के माध्यम से हमलोग 'आदिबद्री और कनकाचल' के हर गाँव में जाकर सभी ग्रामवासियों को इस आंदोलन में अंतिम लड़ाई के लिए सम्पूर्ण रूप से तैयार करेंगे व यात्रा के समापन के बाद जो भी परिस्थिति बनेगी उसकी जिम्मेदार स्वयं राजस्थान की सरकार होगी। उन्होंने स्पष्ट किया कि साधु-संत इस बार मरने के लिए ही इस यात्रा में आये हैं व किसी भी कीमत में पीछे नहीं हटेंगे। 'क्रांति-यात्रा' में मानमंदिर-गुरुकुल के छोटे-छोटे साधु-बालक, बृजवासी, संतगण व कई जनप्रतिनिधि सम्मिलित हुए। सम्पूर्ण यात्रा में 'हरिनाम-संकीर्तन' की धुन बजती रही। वहीं गुरुकुल के सैकड़ों साधु-बालक भी भगवा वस्त्र में कीर्तन पर थिरकते नजर आए। यात्रा जहाँ से भी निकली, वहाँ के सभी ग्रामवासियों के लिए कौतूहल का विषय बनी और सब ब्रजवासी बाहर निकल-निकल कर इस यात्रा को देखने व इसमें सम्मिलित होने के लिए आगे बढ़े। 'क्रांति- यात्रा' आज अलीपुर ग्राम होते हुए अपने पड़ाव 'आदिबद्री धाम' पर पहुँची जहाँ 'भगवान् आदिबद्रीनाथ' का महापूजन एवं आरती करके सभी आंदोलनकारियों व यात्रीगणों ने ब्रज के पर्वतों की रक्षा के लिए प्रार्थना की।

निष्कामभावपूर्वक सतत श्रीइष्ट का गुणगान (आराधना) करना ही सच्ची अनन्यता है।

प्रेम की प्रगाढ़ता 'महाभाव'

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (१८/९/२०११) से संग्रहीत

आदि शंकराचार्यजी ने जो चतुःसूत्री लिखी, वह तो बहुत विस्तृत है, सारा भाष्य एक तरफ और चतुःसूत्री (चार सूत्र) एक तरफ; उस पर उन्होंने अद्वैत सम्प्रदाय का पूरा ढाँचा खड़ा किया | चतुःसूत्री का पहला सूत्र है – **'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा'** इसमें अथ का बहुत लम्बा वर्णन है कि तुम ब्रह्म की जिज्ञासा करो; ब्रह्म अर्थात् 'भगवान्' की जिज्ञासा तभी हो सकती है जब अन्तःकरण में षट्-संपत्तियाँ हों, छः चीजें यदि नहीं हैं तो अभी तो जिज्ञासा ही नहीं हुई फिर ब्रह्म (भगवान्) का मिलना तो बहुत दूर की बात है | शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा – ये छः सम्पत्तियाँ जब आ जाती हैं तब मनुष्य भगवान् को जानने और उनके बारे में प्रश्न करने का अधिकारी होता है | छःसम्पत्तियों में 'शम' पूर्ण मानसिक शांति को कहते हैं, 'दम' इन्द्रियों के पूर्ण दमन को कहते हैं, चित्त वृत्ति संसार से हट जाये, इसे 'उपरति' कहते हैं, इसी प्रकार मन समाहित (एकाग्र) रहे, उसे समाधान कहते हैं | गुरु और वेदान्त-वाक्यों में विश्वास को 'श्रद्धा' कहते हैं | सब कुछ सह लेने को 'तितिक्षा' कहते हैं | शंकराचार्यजी ने लिखा है कि ये छः चीजें जब आ जाती हैं तब मनुष्य ब्रह्म (भगवान्) की जिज्ञासा का अधिकारी होता है | इसके बाद उन्होंने देहाध्यास का सिद्धान्त स्थापित किया कि क्या पंडित, क्या कुत्ता, क्या गधा – देहाध्यास की तराजू पर संसार के सभी जीव समान हैं | डंडा लेकर दौड़ो तो उसे देखकर पण्डित भी भागता है, कुत्ता भी भागता है और गधा भी भागता है; इसलिए देहाध्यास क्या है, इसका विस्तृत विवेचन वेदान्त में किया गया है | 'देहाध्यास' अर्थात् देह + अधि + आस = देहाध्यास; हम जो नहीं हैं, वह भी अपने को समझ बैठे हैं | हम शरीर नहीं हैं, शुद्ध चैतन्य 'आत्मा' हैं, फिर भी अपने को 'देह' समझ बैठे हैं, 'इन्द्रिय' समझ बैठे हैं, 'अन्तःकरण' समझ बैठे हैं; यह देह का अध्यास, इन्द्रियाध्यास, अन्तःकरणाध्यास – ये सभी अध्यास अनादिकाल से आरोपित हैं | शंकराचार्यजी के शब्दों में इसी को अध्यारोप कहा गया है, यह हट जाये तो इसको 'अपवाद' कहते हैं, ये उनके टेक्निकल (technical) शब्द हैं | अनादिकाल से जीव अध्यारोप से ग्रसित है, इसका 'अपवाद' करने के लिए वेदान्त आदि शास्त्र बनाये गए जिसमें जीव को बोध कराया जाता है कि न तुम शरीर हो, न इन्द्रिय हो, न बुद्धि हो, न मन हो | इसके बाद शंकराचार्यजी ने अपना विवर्तवाद सिद्ध किया कि संसार है ही नहीं, जो दिखाई पड़ता है | रज्जु (रस्सी) में साँप दिखाई पड़ता है जबकि है नहीं | सीप में चाँदी दिखाई पड़ती है जबकि वहाँ है नहीं | इस तरह शंकराचार्यजी ने विवर्तवाद की स्थापना किया | सतत्त्व तो परिणामवाद होता है और अतत्त्व विवर्तवाद होता है | जैसे सीप में चाँदी नहीं है किन्तु वहाँ दिखाई पड़ती है, रस्सी में सर्प नहीं है लेकिन दिखाई पड़ता है, इतरेतराध्यास हो गया है; इस तरह आदि शंकराचार्यजी ने विवर्तवाद की स्थापना की, जो बहुत विस्तृत है और हम लोगों के काम का नहीं है | हम लोग विवर्तवाद नहीं मानते है क्योंकि वे संसार को एक स्वप्न मानते हैं, जैसे - सपने में संसार दिखाई पड़ता है, वास्तव में है नहीं, केवल अध्यास के कारण दिखाई पड़ता है; इसका खण्डन किया वैष्णवाचार्यों ने और कहा कि नहीं, संसार है, परिणामवाद है | भगवान् की अचित्-शक्ति का परिणाम है - संसार | वैष्णवों ने अद्वैत- दर्शन का खण्डन करते हुए उसके अनुयायियों से कहा कि यदि तुम कहते हो कि संसार नहीं

है तो फिर तुम भाष्य क्यों बनाते हो ? तुम्हारा भाष्य भी एक विवर्त है | जब संसार है ही नहीं तो फिर अध्यास को हटाने के लिए अपवाद क्यों बनाते हो, चुपचाप बैठे रहो | वैष्णव लोग कहते हैं कि यह तो 'वदतो व्याघात दोष' है अर्थात् किसी की बात उसी के द्वारा स्वयं कट जाए, जैसे - कोई कहे कि मेरी माँ बाँझ है, यदि तेरी माँ बाँझ है तो तेरा जन्म कैसे हो गया ? इसी तरह वैष्णवों ने शंकराचार्यजी और उनके अनुयायियों से प्रश्न किया कि जब संसार है ही नहीं तब तुम उसको काटने के लिए भाष्य क्यों लिखते हो ? इसका उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि तीन सत्तायें हैं – व्यवहारिक सत्ता, प्रातिभासिक सत्ता और पारमार्थिक सत्ता | पारमार्थिक सत्ता तो यथार्थ सत्ता है | प्रातिभासिक सत्ता वह है जिसका आभास तो होता है किन्तु वह है नहीं, जैसे - सीप में चाँदी दिखाई पड़ती है, रस्सी में सर्प दिखाई पड़ता है | प्रातिभासिक सत्ता की तरह यह संसार व्यवहारिक रूप में दिखाई पड़ रहा है, व्यवहार में दिखाई पड़ता है, व्यवहार में इसका आभास सही मालूम पड़ता है जबकि परमार्थ में कुछ नहीं है | परमार्थ सत्ता में तो केवल 'ब्रह्म' रहेगा | इस तरह इन तीन सत्ताओं का उदाहरण देकर वे अपने आप को अर्थात् अपने मत का बचाव करते हैं | इस प्रकार बहुत सूक्ष्म रूप में शंकराचार्यजी के मत को हमने बताया, जिसको वैष्णव लोग नहीं मानते हैं | एक प्रश्न है कि 'प्रेम' के आगे की स्थितियाँ क्या हैं ? कागभुशुण्डिजी ने भगवान् से शुद्ध, निष्कैतव और निरुपाधि प्रेम माँगा था |

अविरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव |
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ||
(श्रीरामचरितमानसजी, उत्तरकाण्ड – ८४)

अविरल, अहैतुकी, अप्रतिहता भक्ति ही विशुद्ध भक्ति है, उस भक्ति का लक्षण है कि वह अहैतुकी होती है, उसमें कोई कारण नहीं होता कि धन मिल जाये, भोग मिल जाये; इसके साथ ही शुद्ध भक्ति अप्रतिहत होती है अर्थात् वह कभी रुकती नहीं है | कामना वाले की भक्ति रुक जाएगी, आज नहीं रुकेगी तो कल रुक जाएगी क्योंकि कामनायें 'भक्ति' का अवरोध करतीं हैं, प्रतिहत करती हैं | किसी ने पूछा कि ऐसी जो भक्ति है, क्या इससे आगे भी कुछ है ? इसका उत्तर यह है कि जैसे किसी ने एम. ए. की पढ़ाई की | एम. ए. के बाद भी पी.एच.डी., डी. लिट. की पढ़ाई होती है; वैसे ही जो विशुद्ध भक्ति है, वह ब्रह्मज्ञान से आगे की चीज है, पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए; इसका प्रमाण है भागवत का श्लोक, जिसके चैतन्य महाप्रभुजी ने १०८ अर्थ किए थे –

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे |
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ||
(श्रीभागवतजी १/७/१०)

संक्षेप में इसका भाव यह है कि जो आत्माराम मुनि हैं, जो अपनी आत्मा में ही रमण करते हैं, निर्गुण-निराकार सत्ता का अनुभव करते हैं, निर्ग्रन्थ हो चुके हैं अर्थात् उनकी अविद्या की गाँठ टूट चुकी है, जो माया से निवृत्त हो गये हैं, वे भी 'उरुक्रम' अर्थात् भगवान् की भक्ति करते हैं, क्यों करते हैं, जब उनकी माया की गाँठ टूट गई, भवसागर से पार हो गये ? इसका उत्तर एक ही शब्द में दिया गया है – 'इत्थम्भूतगुणो हरिः' अर्थात् भगवान् में ऐसे गुण हैं कि ब्रह्मज्ञानी भी अपने ब्रह्मज्ञान को भूलकर भगवान् की भक्ति करते हैं क्योंकि भगवान् की लीलाओं में ऐसा माधुर्य है, 'गुण' माने इतना मधुर है, इतना मीठा, ऐसा रस है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, वह ब्रह्मानन्द से आगे की बात है | इसी बात को कई जगह कहा गया है | दूसरे स्कन्ध में शुकदेव जी ने कहा – **प्रायेण मुनयो.....||** (श्रीभागवतजी २/१/७) निर्गुण ब्रह्म में रमण

करने वाले मुनिगण भी भक्ति करते हैं, जो विधि-निषेधात्मक कर्म के बन्धनों से छूट गये हैं | निर्गुण ब्रह्म का अनुभव करते हैं लेकिन उस ब्रह्म सत्ता को प्राप्त करने के बाद भी वे भगवान् की भक्ति करते हैं | शुकदेवजी स्वयं अपना उदाहरण देते हैं कि जैसे मुझे देख लो – **परिनिष्ठितोऽपि..... ||** (श्रीभागवतजी २/१/९) मैं निर्गुण ब्रह्म में परिनिष्ठित था किन्तु उत्तमश्लोक भगवान् की लीलाओं से मेरा मन खिंचा और इसीलिए मैंने श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया | अतः जो विधि-निषेध से अतीत हो चुके हैं, निर्गुण ब्रह्म के भाव में स्थित हैं, वे भी अपना ब्रह्मभाव छोड़कर भगवान् के गुणों में रमण करते हैं | इसलिए जो विशुद्ध, निर्गुणा, निरुपाधि भक्ति है, उसके आगे क्या है ? इसका उत्तर भी संक्षेप में ही देते हैं क्योंकि इसका विस्तार तो बहुत अधिक है | जैसे - गन्ने का रस बहुत मीठा होता है, उसी गन्ने के रस को गुड़ बना दो तो और मीठा हो जाएगा, शक्कर बना दो तो और मीठा हो जाएगा, अन्त में मिसरी बना दो तो और अधिक मीठा हो जाएगा, उसकी भी चासनी बना दो और किसी चीज में दे दो तो चाटते रह जाओगे | ऐसे ही भगवान् की भक्ति भी गाढ़ी होती जाती है, जैसे - ईख का रस, बस इतना ही अंतर है | भक्ति से आगे तो कुछ नहीं है | जैसे ईख के रस के मीठेपन का स्तर क्रमशः बढ़ता जाता है, वैसे ही भक्ति है | शुरू में भक्ति के अन्दर पाँच भाव होते हैं – शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य | शान्त भक्ति ऋषि-महर्षि जैसे शौनक आदि करते हैं, सनकादि मुनिगण ब्रह्मलोक में भगवान् का ध्यान करते हुए शान्त-भाव की भक्ति करते हैं लेकिन उसमें भगवान् के गुण आदि का आविर्भाव नहीं होता है | शान्त रस से आगे चलने पर उससे अधिक मीठा है – दास्य-रस | दास्य में भगवान् से अधिक निकटता होती है | 'दास' अपने स्वामी के पास पहुँचता है | शान्त-रस वाला दूर से भगवान् का ध्यान करता है लेकिन दास बनना बहुत कठिन होता है | 'दास' को भगवान् से भी बड़ा बताया गया है | लोग सारे जीवन कथा कहते हैं किन्तु दास का एक लक्षण भी उनके जीवन में नहीं आता है और वही पैसा, भोग की कामनायें, छल-कपट आदि बने रहते हैं, भगवान् का आश्रय कभी सिद्ध नहीं होता है | सर्वभाव से भजन दिखाई नहीं देता है लेकिन उसका वर्णन तो किया ही जाता है, क्या पता भगवान् कृपा कर दें | शान्त-भाव से अधिक रस दास्य-भाव में है क्योंकि उसमें भक्त को सेवा मिलती है | सेवा करने वाला पास जाता है | सुप्रीम- कोर्ट के जज के पास तुम नहीं पहुँच सकते हो | जाने का प्रयास करोगे तो पकड़ लिया जायेगा | राष्ट्रपति के पास भी नहीं जा सकते हो लेकिन जो उसका नौकर है, वह उसके पास जायेगा | जज का नौकर, राष्ट्रपति का नौकर बार-बार उनके पास जायेगा | अतः शान्त-भाव से दास्य-भाव में अधिक निकटता होने के कारण वह उससे बड़ा है | दास्य से आगे चलने पर 'सख्य-भाव' उससे बड़ा है | सखा तो भगवान् के कन्धे पर बैठ जायेगा | सखा का अधिकार ज्यादा होता है, दास का अधिकार उतना नहीं होता है | सख्य में विश्रम्भ (विश्वास) अधिक होता है | शान्त में निष्ठा होती है, दास्य में निष्ठा के साथ सेवा आ जाती है, एक गुण बढ़ गया; सख्य में निष्ठा और सेवा तो रहेंगे ही, एक गुण विश्रम्भ (विश्वास) और बढ़ जाता है | विश्वास रहता है कि अपने मित्र के कन्धे पर बैठने पर भी वह बुरा नहीं मानेगा | इस तरह सख्य में तीन गुण हो गए | शान्त में एक गुण था निष्ठा, दास्य में दो गुण हुए निष्ठा और सेवा, सख्य में तीन गुण हुए – निष्ठा, सेवा और विश्रम्भ | सख्य से ऊँचा 'वात्सल्य-भाव' है | माँ अपने बच्चे को डाँटती भी है, मारती भी है | वात्सल्य में तीन गुण निष्ठा, सेवा और

विश्रम्भ तो हैं ही, साथ-साथ एक गुण और होता है लालन-पालन, यह वात्सल्य में अधिक होता है | वात्सल्य रस से ऊँचा है 'श्रृंगार-रस' | श्रृंगार-रस में सर्वांग से प्रेमास्पद की सेवा करने का अधिकार रहता है जो न सख्य में है, न वात्सल्य में है | सख्य में भी मर्यादा है, वात्सल्य में भी मर्यादा है | 'श्रृंगार-रस' में सेवा सर्वाधिक निकट की हो जाती है | सर्वांग-सेवा न सख्य में हो सकती है, न दास्य में हो सकती है और न ही वात्सल्य में हो सकती है; इसीलिए श्रृंगार-रस को 'रसराज' कहा गया है | अब प्रेम की कोटियों के बारे में जानो – 'श्रृंगार-रस' आगे चला तो फिर इसकी भी बहुत-सी कोटियाँ आतीं हैं; सबसे पहले यह शुद्ध प्रेम (अहैतुकी प्रेम) बना, उसके बाद और गाढ़ा होकर 'स्नेह' बन जाता है | 'स्नेह' के दो भेद हो जाते हैं – घृत-स्नेह और मधु-स्नेह | आगे चलकर 'स्नेह' गाढ़ होकर 'मान' बन जाता है | उच्च प्रेम में 'मान' करने का अधिकार होता है, उसमें नायक मनाता है | 'मान' का भी विस्तार है – उदात्त मान और अनुदात्त मान; आगे बढ़कर 'मान' प्रणय बन जाता है | 'प्रणय' में एकात्मकता इतनी आ जाती है कि **"साँवरे लाल को साँवरो रूप, अंजन में कजरा कर राख्यो |"** काजल बनाकर लगा लिया | इस तरह प्रणय में एकात्मकता आ जाती है, उसको प्रणय कहते हैं | फिर प्रणय के बाद राग, 'राग' के बाद अनुराग, 'अनुराग' के बाद भाव, 'भाव' के बाद रूढ़-भाव फिर अधिरूढ़-भाव, उसके बाद में महाभाव, 'महाभाव' के बाद मोहन-मादन फिर 'मोहन' के भी दस भेद हो जाते हैं | राग में दुःख में भी सुख मिलता है, जैसे - विरह में सुख की प्राप्ति होती है | इसी तरह 'अनुराग' में केवल प्रेमास्पद के सुख की ही चाह होती है न कि अपने सुख की | जैसे गोपियों ने गोपी-गीत के अन्त में कहा –

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु.....|| (भागवतजी १०/३१/१९)

यह अनुराग की कोटि हो गई | इसके आगे भाव, 'भाव' के बाद महाभाव, उसके बाद मोहन | श्रृंगार-रस के मिलन में वही महाभाव 'मादन' बन जाता है, जिसमें सभी अंग मिलते हैं, यहाँ तक कि चोटी (वेणी) भी एक-दूसरे से मिलती है; ऐसा विलक्षण मादन-भाव होता है, जिसे समझा नहीं जा सकता | इस संसार में तो यह भाव है ही नहीं | फिर जब यह विरह में 'मोहन' बनता है तो इसके दस भेद हो जाते हैं – चित्र जल्प, संजल्प, प्रजल्प, विजल्प, अधिजल्प .....आदि | ये हमने इसलिए बताया कि प्रेम की गाढ़ता के कारण प्रेम की कोटियाँ बढ़ती जातीं हैं और उसमें 'दास्य' एक सीमा तक बढ़ेगा, महाभाव तक नहीं पहुँच सकता | 'सख्य' थोड़ा आगे तक जायेगा, वात्सल्य और आगे तक जाता है - राग कोटि तक, जिसमें दुःख भी सुख लगता है ('वात्सल्य-रस' राग की कोटि तक जायेगा, आगे नहीं जायेगा) | इसके बाद 'श्रृंगार' आगे चलकर 'अनुराग' तक जाता है और वही 'महाभाव' तक पहुँचता है |

अर्थ में छिपा 'अनर्थ'

धर्म का लक्ष्य जब अर्थ (धन आदि की कामनापूर्ति) हो जाता है तो वहाँ विकृतियाँ आ जाती हैं। कारण - धन में १५ दोष हैं –

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥

(श्रीभागवतजी ११/२३/१८)

ये १५ दोष धन सहित 'धर्म' में आ जाते हैं, फिर धर्म अधर्म बन जाता है, धर्म का प्रयोजन भगवान् नहीं रह जाते हैं –

एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

(श्रीभागवतजी ११/२३/१९)

श्रेयोर्थी को चाहिए, धन को दूर से ही त्याग दे अर्थात् धन का दर्शन-स्पर्श भी न करे।

पैसा पापी साधु को परसि लगावै पाप ।
विमुख करै गुरु इष्ट तैं उपजावै संताप ॥
उपजावै संताप ज्ञान वैराग्य बिगारै ।
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर सिंगारै ॥
सब द्रोहिनि में सिरें भक्त द्रोही नहिं ऐसा ।
भगवत रसिक अनन्य भूल जिन परसौ पैसा ॥

(श्रीभगवतरसिकजी की वाणी- उत्तरार्द्ध.पद सं.२३)

इस अर्थ (सांसारिक धन) ने युगों से अपवर्ग के सभी साधनों को अनर्थ बना दिया, अतएव 'भगवद्-रस-रसिकता' विषय-रस-रसिकता' बन गई।

विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥

(पद्मपुराणोक्त भा.माहा. १/७१)

लोभ ने कथा-कीर्तन को भी निस्सार कर दिया। जबकि धर्मस्य .....(भा.१/२/९) नार्थस्य धर्मैकान्तस्य .....धर्म की सार्थकता अर्थ की प्राप्ति में नहीं है और अर्थ की सार्थकता धर्म में ही है, न कि भोग विलास में।

जो पै राम चरण रति होती ।
जो श्री पति महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार-द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ।
जे लोलुप भये दास आस के ते सबही के चेरे ।
प्रभु विस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥

(तुलसी विनय पत्रिका १६८)

गोस्वामी श्री तुलसी दास जी कहते हैं - यदि श्रीरामजी के चरणों में प्रेम होता, उनकी महिमा का ज्ञान होता तो फिर टुकड़े (धन, मानादि) के लिए द्वार-द्वार पेट दिखाते हुए क्यों घूमता? जो लोभी पुरुष आशा का दास बन गया है। वही सबकी गुलामी करता फिरता है क्योंकि धन, विषयादि की कामना वाले को कभी स्त्री तो कभी सेठों की दासता करनी ही पड़ती है। वस्तुतः जिसने भगवान् पर विश्वास करके आशा को जीत लिया है, वही सच्चा सेवक है।

लोभ परायण वक्ताओं का समूह आज भगवद्कथा को सारहीन कर रहा है। इससे जगत का कल्याण न होकर विनाश ही हो रहा है।

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥

(श्रीभागवतजी ७/९/४६)

मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्म पालन, शास्त्र-व्याख्या, एकान्त-निवास, जप एवं समाधि आदि मोक्ष प्राप्ति के साधन अजितेन्द्रिय के लिए जीविका मात्र रह जाते हैं और पोल खुलने पर जीविका भी सिद्ध नहीं हो पाती है। ऐसे अर्थलोलुप वक्ताओं ने छद्म वेश धारणकर समस्त कल्याणकारी मर्यादाओं का अतिक्रमण कर सर्वत्र निर्लज्जता का ही प्रदर्शन कर रखा है और उसके पश्चात् भी हम भक्त या विद्वान बनते हैं –

लाज न लागत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ॥ (तुलसी विनय पत्रिका –१८५)

गोस्वामी तुलसीदास जी ने क्या सुन्दर चित्रण किया है हमारी मनःस्थिति का, एक बार हम अपने अन्तःकरण में झाँक कर देखें तो ज्ञात हो जाए कि हमारा क्या स्वरूप है –

कैसे देउँ नाथहिं खोरि ।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि ।

देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संग-बस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं सचि-पचि सुकृत-सिला बटोरि ।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि ॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि ।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि ।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥

(तुलसी विनय पत्रिका –१५८)

हे भगवन्! आपको मैं कैसे दोष दूँ? कामनाओं से घिरा हुआ हमारा यह मन आपकी भक्ति छोड़कर भटकने में लगा है। स्वयं को पुजाने में तो बड़ा प्रेम है किन्तु आपको पूजने में कुछ नहीं। हमारी मूढ़ता तो देखो, दूसरों को उपदेश देने में बहुत कुशल हो गये हैं किन्तु स्वयं किसी की शिक्षा नहीं मान सकते हैं। पाप करने में हमारा बड़ा स्नेह है किन्तु उन्हें किसी से कहते नहीं हैं परन्तु अच्छे संगवशात् एक-दो जो सुकृत बन गये हैं, उनका संसार के आगे ढिंढोरा पीटते हैं। शिलोञ्छ बीनने (खेत में पड़े दानों को बीनने) के समान अपने सुकृतों को बटोर रखा है किन्तु हे दयानिधान! यह दम्भ बलात् हमारे हृदय से उन्हें बाहर फेंक रहा है अर्थात् दम्भ से सब सुकृत नष्ट हो जाते हैं। यह लोभ हमारे मन को आशा की रस्सी से बाँधकर बन्दर की भाँति नचा रहा है तो भी हम एक विद्वान् की भाँति वैराग्य का निष्कर्ष सुनाते फिरते हैं। यह है हमारी मनःस्थिति। और भक्त की स्थिति यह है कि काल-कवलित सांसारिक वैभव तो क्या अपवर्ग भी नहीं चाहता है और एक हम हैं जो गुरु बनकर, वक्ता बनकर, रसिक बनकर, अर्चक बनकर, धर्माचार्य बनकर प्रलोभन में आशा की डोर से बँधकर संसार में नाच रहे हैं। श्री सनकादिक के वचन –

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं
किन्त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ।
येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः
कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥

(श्रीभागवतजी ३/१५/४८)

हे भगवन् ! आपका कीर्तनीय यश अखिल संसार के निखिल दुःखों की निवृत्ति करने वाला है। आपके चरण-शरणागत 'आपकी कथा-कीर्तन के रसिकजन' जिन्हें कथा-कीर्तन का रस मिल चुका है, वे मोक्ष भी नहीं चाहते हैं फिर कालविद्रुत स्वर्गादि के भोग व इन्द्रपद की वे क्या इच्छा करेंगे?

कथाकार को चाहिए कि विनाशी सांसारिक वैभव तो क्या अपवर्ग-त्याग का आदर्श रखे।

हम जैसे शुल्क स्थापित कर्ता धर्मध्वजी कथा व्यापारियों के लिये महापुरुषों ने कहा है –

वेषधारी हरि के उर सालै ।
लोभी दम्भी कपटी नट से सिस्नोदर को पालै ॥
गुरू भयो घर घर में डोलै नाम धनी को बेचै ।
परमारथ स्वपनें नहिं जानै पैसन हीं को खैंचै ॥
कबहुँक बक्ता ह्वै बनि बैठै कथा भागवत गावै ।
अर्थ अनर्थ कछू नहिं भासै पैसन ही को धावै ॥
कबहुँक हरि मन्दिरको सेवै करै निरन्तर बासा ।
भाव भक्ति को लेस न जानै पैसन ही की आसा ॥
नाचै गावै चित्र बनावै करै काव्य चटकीली ।
साँच बिना हरि हाथ न आवै सब रहनी है ढीली ॥
बिन बिवेक बैराग भक्ति बिनु सत्य न एकौ मानौ ।
भगवत बिमुख कपट चतुराई सो पाखण्डै जानौ ॥

(श्रीभगवतरसिक जी की वाणी पद सं.४)

अथवा

जगत में पैसन ही की माँड़ ।

(श्रीभगवतरसिक जी की वाणी पद सं.३)

"नामहिं बेचै खाय"

(श्रीबिहारिनदेवजी)

जहाँ धर्म की ध्वजामात्र है, ध्वजा के नीचे काम, लोभादि नारकीय कर्म हैं, उन धर्म ध्वजियों को देखकर नरक भी नाक सिकोड़ लेता है – **धींग धरम ध्वज धंधक धोरी ।**

(श्रीरामचरितमानसजी, बालकाण्ड - १२)

सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ॥

(श्रीरामचरितमानसजी, बालकाण्ड -२९)

अरे, कथा-कीर्तन में शुल्क ठहराने की आवश्यकता ही कहाँ। कथा-कीर्तन को व्यापार बनाने से अधिक नारकीय कार्य क्या होगा? अरे, भगवत्कथा तो पीयूष है, जिसके पीने से निश्चित

ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है फिर इससे रोटी-दाल की प्राप्ति तो इसका उपहास है।

श्री कर्दम जी के वचन –

लोकांश्च लोकानुगतान् पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम्।
पररस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः॥

(श्रीभागवतजी ३/२१/१७)

पशुता को छोड़ दो। कथा-कीर्तन का व्यापार पशुता है। भगवत्कथा तो ऐसी सीधु (मदिरा) और ऐसी सुधा है कि भूख-प्यासादि देहधर्मों को शान्त कर देगी। क्या परीक्षित को जलान्न का स्मरण भी हुआ?

"भटकत फिरै गौड़ गुजरात" (व्यास वाणी)

धन के लिए न जाने कहाँ-कहाँ भटकते हैं,

प्रभु पर भरोसा करके तो देखो –

भटकै मत देस-देस वेष क्यों लजावै।
कुञ्जन के कोने पर्‌यो युगल क्यों न गावै॥
राख विश्वास जिय पालन करिहैं श्रीराधा।
'वंशी अलि' सत्य-सत्य पूजिहैं सब साधा॥

धन, भोगादि प्रेय पदार्थों का अति संचय सभी अनर्थों का मूलभूत है।

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम्।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः॥

(श्रीभागवतजी ११/९/१)

संग्रह एक दुःखप्रद ग्रह है, जो विवेकी इस बात को जान गया वह तो अकिञ्चन बन जायेगा अर्थात् उसके जीवन से संग्रह वृत्ति ही चली जायेगी एवं अनन्त सुखधाम भगवान् की प्राप्ति हो जायेगी। संसार में अकिञ्चन बनना, गरीब बनना कोई नहीं चाहता है अतएव भगवान् से दूरी बढ़ जाती है। यह तो परम भागवत वृत्रासुर का ही साहस था।

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः॥ (श्रीभागवतजी ६/११/२३)

"हे नाथ ! आप मेरे त्रिवर्ग का नाश कर दो"। ऐसे अकिञ्चन भक्तों को ही भगवान् की कृपा का अनुभव होता है।

'नारायण' मैं सत्य कहूँ भुजा उठाय के आज।
जो तू बने गरीब तो मिलें गरीब निवाज॥

पुनः

स्याम गरीबनि हूँ के गाहक।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक॥
कहा बिदुर की जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक।

(सूर विनय पत्रिका – २०)

परम अकिञ्चन थे श्री विदुर जी जिनके हृदय में कृष्ण सेवा के अतिरिक्त और कोई अभिलाषा ही नहीं थी।

न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः। वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनःसमृद्धयः॥ (श्रीभागवतजी ४/९/३६)

मैत्रेय जी कहते हैं – हे विदुर जी ! आपकी तरह जो लोग श्रीकृष्ण-चरणारविन्द मकरंद के ही रसिक हैं, जो निरन्तर प्रभु की चरण रज का ही सेवन करते हैं एवं जिनका मन दैव गति से प्राप्त सभी परिस्थितियों में सन्तुष्ट रहता है, वे प्रभु से उनकी सेवा के अतिरिक्त अपने लिए किसी भी पदार्थ की याचना नहीं करता। ऐसे अकिञ्चन भक्तों के चिरऋणी हो जाते हैं भगवान्।

अतः सूरदास जी कहते हैं –

कहा पांडव कैं घर ठकुराई? अरजुन के रथ-बाहक॥
कहा सुदामा कैं धन हो? तौ सत्य-प्रीति के चाहक।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरत के दुःख-दाहक॥

(सूर विनय पत्रिका – २०)

क्या हम लोग अकिञ्चन हैं?

हम लोगों को मान-प्रतिष्ठा, धन-वैभव .....आदि की इच्छा है, यह मन की चोरी है। अभी अकिञ्चन कहाँ, चोर हैं। पूर्णतः निष्काम (सांसारिक वासनाओं से सर्वथा शून्य) जन ही विशुद्ध भक्त हैं, उन्हीं के द्वारा संसार में 'वास्तविक भक्ति' की सुगंध फैलती है|

दो-चार माला फेरकर हम लोग आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, उसका परिणाम क्या है ? भगवान् की क्रोधाग्नि से जलते रहते हैं | आज देश की दुर्दशा क्यों है ? क्योंकि भगवान् की क्रोधाग्नि से समाज जल रहा है, नहीं तो भगवान् अवश्य रक्षा करते हैं, ऐसा हो ही नहीं सकता |

जीवन-सार 'श्रीकृष्ण-संस्मरण'

श्रीबाबामहाराज द्वारा कथित श्रीमद्भागवत सप्ताह' से संकलित

जहाँ कोई नातेदार, रिश्तेदार, कोई परिवार का सदस्य सेवा करने वाला, पानी देने वाला भी न हो, उन लोगों को पता भी न पड़े कि इसका शरीर कब और कहाँ छूटा ? इसे कहते हैं शरीर का त्याग करना – **अविज्ञातगतिर्जह्यात्** | ऐसा इसलिए करना चाहिए क्योंकि अन्तिम समय में एकमात्र श्रीकृष्ण का स्मरण करना चाहिए | श्रीश्यामसुन्दर ही तो अपने सच्चे सम्बन्धी हैं, उनके अतिरिक्त अपना कौन है ? फिर ये बेटा-बेटी आदि की आसक्ति बिल्कुल व्यर्थ है | जब जंगल में एकांत में पड़े रहेंगे, वहाँ कोई सेवा करने वाला नहीं होगा, उस समय असहाय अवस्था में, बीमारी में केवल श्यामसुन्दर की ही याद आयेगी | इसलिए एकांत में ऐसे ही स्थान में अपना शरीर त्याग करना चाहिए, ऐसा करने वाला ही है सच्चा कृष्णप्रेमी | विदुरजी ने एक अन्य महत्वपूर्ण बात और कही कि यदि किसी को स्वतः(अपने आप) वैराग्य हो जाए तब भी बढ़िया है और यदि किसी के सिखाने से वैराग्य हो जाए, वह भी बढ़िया है | कोई अपने हृदय में श्यामसुंदर को स्थापित करके घर से चल दे, यह सर्वोत्तम उपाय है |

यः स्वकात्परतो.....| (श्रीमद्भागवतजी १/१३/२६)

विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा कि अब कलियुग आने वाला है | राजन् ! अब इस महल से आप निकल जाइये, आप तो यहाँ कुत्ते की भाँति अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं | अब इस शरीर के मोह को छोड़ दीजिये | आपका शरीर बुढ़ापे का शिकार हो गया है, आयु बीत चुकी है, आपके सभी पुत्रों की मृत्यु हो गयी और अब भी आप यहाँ जी रहे हैं | जिन कुन्ती के पुत्रों को आपने जान से मारने का प्रयास किया और अब उन्हीं के टुकड़े आप खा रहे हैं | इस प्रकार अपने छोटे भाई विदुर की बातें सुनकर धृतराष्ट्र की आँखें खुल गईं और वे विचार करने लग गए
कि यदि मैं अपने भाई विदुर की बात पहले ही मान लेता तो मेरी यह दुर्दशा न होती | अब तो तत्क्षण ही उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया | इसीलिए तो शास्त्रों में कहा गया है कि किसी घर में एक भी भक्त होता है तो वह सभी का उद्धार कर देता है | विदुर जी के सदुपदेश से विवेक प्राप्त होने पर धृतराष्ट्र महल से वन की ओर चले गए, उनके पीछे ही गान्धारी भी चल पड़ीं | इधर प्रातःकाल होने पर जब युधिष्ठिर धृतराष्ट्र व गांधारी को प्रणाम करने पहुँचे तो देखा कि दोनों माता-पिता अपने कक्ष में नहीं थे, बहुत ढूँढ़ा लेकिन नहीं मिले तब तो वे रोने लगे | संजय से पूछा कि तुमने हमारे माता-पिता को कहीं देखा है ? संजय भी दुःखी होकर बोले – 'महाराज ! पता नहीं रात को ही वे दोनों कहाँ चले गये ?' उसी समय नारदजी तुम्बुरु गन्धर्व के साथ वहाँ आये तो देखा कि युधिष्ठिरजी रो रहे थे, उन्होंने नारदजी से पूछा – 'महाराज ! हमारे माता-पिता कहीं गंगाजी में तो नहीं गिर पड़े, कहीं उन्होंने आत्महत्या तो नहीं कर ली ?' नारदजी ने कहा - 'काल भगवान् की विचित्र लीला है; वे ही संयोग कराते हैं, वे ही वियोग कराते हैं, हम सब तो खिलौना हैं | हम स्वयं अनाथ हैं, इस संसार में कौन किसकी रक्षा कर सकता है ? हमारी टांग तो मौत रूपी अजगर ने पकड़ रखी है और हम दूसरों की रक्षा करने जा रहे हैं | माता-पिता की टांग काल रूपी भयंकर सर्प ने पकड़ रखी है और वे अपने बच्चे की रक्षा करने दौड़ते हैं | प्रभु की कैसी लीला है ? कैसा अज्ञान है ? 'एक जीव' दूसरे जीव का भोजन बना हुआ है |' इस प्रकार 'नारदजी' युधिष्ठिर को समझाने लगे कि दुःख मत करो, यह सब काल की लीला है | अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर 'नारदजी' युधिष्ठिर को बताते हैं कि तुम्हारे माता-पिता धृतराष्ट्र और गान्धारी हिमालय के दक्षिण भाग में स्थित 'सप्तस्रोत' नामक स्थान में गए हैं | यद्यपि धृतराष्ट्र और गान्धारी पिछली रात में ही गए थे किन्तु नारदजी उनके अगले घटनाक्रम की भविष्यवाणी करने लगे | नारदजी ने कहा कि धृतराष्ट्र और गांधारी केवल जल पीकर शान्तात्मा होकर वहाँ बैठे हुए हैं | अपनी बुद्धि को क्षेत्रज्ञ

में लीन करके तथा क्षेत्रज्ञ को ब्रह्म में लीन करके निरावरण, निरुपाधि होकर वे स्थित हैं और आज से पाँचवें दिन वे अपने शरीर का त्याग करेंगे, उनका शरीर स्वयं जलकर भस्म हो जाएगा, धृतराष्ट्र के पीछे उनकी पत्नी गान्धारी भी अग्नि में प्रवेश कर जायेंगी | विदुरजी इस दृश्य को देखकर वहाँ से तीर्थयात्रा करने चले जायेंगे; ऐसा कहकर नारदजी तुम्बुरु के साथ चले गए | देवर्षि नारद के मुख से धृतराष्ट्र और गांधारी की सद्गति का समाचार सुनकर युधिष्ठिर ने शोक करना छोड़ दिया |

(प्रथम स्कंध, अध्याय – १४) सूतजी कहते हैं - युधिष्ठिरजी ने अर्जुन को द्वारका श्रीकृष्ण का समाचार लाने के लिए भेजा | कई महीने बीत जाने पर भी अर्जुन द्वारका से लौटकर नहीं आये | धर्मराज युधिष्ठिर ने देखा कि बड़े-बड़े अपशकुन हो रहे हैं, उन्होंने भीमसेन से पूछा कि अर्जुन अभी तक द्वारिका से नहीं लौटे, सात महीने बीत गए | श्यामसुंदर का क्या समाचार है? इसके बारे में कुछ पता नहीं चल रहा है | मेरी बायीं भुजा भी फड़क रही है; उस समय हो रहे बड़े-बड़े अशुभों का भी उन्होंने वर्णन किया | जब युधिष्ठिर भीमसेन से इस प्रकार बात कर रहे थे, उसी समय अर्जुन आ गए | युधिष्ठिरजी ने अर्जुन से कहा – "सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम, उग्रसेन, प्रद्युम्न आदि का समाचार सुनाओ | अर्जुन ! तुम बड़े उदास दिखाई दे रहे हो, कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारे प्यारे श्यामसुंदर का विरह तुम्हें प्राप्त हो गया हो |"

(अध्याय – १५) सूतजी कहते हैं - युधिष्ठिरजी की बात सुनकर अर्जुन बोले – 'महाराज ! मैं तो ठग लिया गया | श्यामसुंदर मुझे छोड़कर चले गए | जिन श्रीकृष्ण की महिमा से द्रौपदी के स्वयंवर में मैंने सबको हराया, 'खांडववन' मैंने अग्निदेव को दे दिया, उन्हीं की कृपा से मयदानव की बनाई हुई सभा प्राप्त की, उन्हीं की कृपा से जरासंध के द्वारा कैद किये हुए राजा मुक्त किये गए, जरासंध का वध किया गया, समस्त कौरव मारे गए | उन्हीं श्रीकृष्ण की कृपा से दुर्वासा के कोप से हम लोगों की रक्षा हुई, जब दस हजार शिष्यों के साथ वे हमारे पास वन में भोजन करने पहुँचे थे; जिनकी कृपा से मैंने महादेवजी को युद्ध में तृप्त किया, इसी शरीर से मैं स्वर्ग में इन्द्रभवन में जाकर बैठा, वहाँ निवास किया और जिनकी कृपा से अकेले ही मैंने कौरवों की सेना में प्रवेश करके उन पर विजय प्राप्त की | कितने ही दिव्य अस्त्र 'वीर योद्धाओं' ने मेरे ऊपर चलाये किन्तु प्रह्लाद जी को जैसे दैत्यों के अस्त्र नहीं छू सके, उसी प्रकार शत्रुओं के अस्त्र-शस्त्र मेरा भी स्पर्श नहीं कर सके | मैं उनसे परिहास किया करता था – 'मित्र ! तुम तो बड़े सच्चे हो अर्थात् झूठे हो |' आज उन्हीं श्रीकृष्ण के बिना जब मैं उनकी रानियों को लेकर द्वारिका से लौट रहा था तो मुझ पराक्रमी को थोड़े-से पशु चुराने वाले ग्वालों ने लूट लिया | यह सब श्यामसुंदर की माया है | इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों के शाप से मोहित होकर यदुवंशी वारुणी मदिरा पीकर उन्मत्त होकर एक-दूसरे से लड़-भिड़कर समाप्त हो गए, केवल ४-५ यदुवंशी बचे हैं |' इस तरह युधिष्ठिरजी को बताकर अर्जुन बहुत दुःखी हुए | यद्यपि श्रीकृष्ण इस धराधाम पर उपस्थित नहीं थे, फिर भी अर्जुन को कालक्रम के प्रभाव से जो गीताज्ञान विस्मृत हो गया था, भक्ति के कारण वह ज्ञान 'भगवद्-इच्छा से' फिर से उन्हें प्राप्त हो गया; ये सब भगवान् की लीलाशक्ति के खेल हैं | भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधामगमन की बात सुनकर सभी पाण्डवों और द्रौपदी ने स्वर्गारोहण का निश्चय किया | 'कुंतीजी' श्रीकृष्ण का धामगमन सुनकर संसार से उपराम हो गयीं | जिस दिन भगवान् इस पृथ्वी से अंतर्धान हुए, उसी समय कलियुग आ धमका | अपने पौत्र परीक्षित् को युधिष्ठिर ने पृथ्वी के सम्राट के रूप में अभिषिक्त किया और मथुरामंडल का राज्य अनिरुद्ध के पुत्र वज्रनाभ को सौंपकर युधिष्ठिर ने अपना सब कुछ अंतरात्मा में लीन कर दिया तथा निराहार होकर स्वर्गारोहण के उद्देश्य से उत्तर दिशा की ओर चल पड़े, जहाँ से कोई वापस नहीं लौटता है, वहाँ उन्होंने अपनी एकांत मति कृष्ण में लगाकर सबसे दुष्कर सद्गति प्राप्त की | आगे सूतजी कहते हैं –

(श्रीभागवतजी १/१५/३४) भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस शरीर से पृथ्वी का भार उतारा था, उसका परित्याग कर दिया | कुछ आचार्यों ने इस श्लोक को नहीं माना है | वस्तुतः जो भगवान् द्वारा अपना शरीर छोड़ने की बात इस श्लोक में कही गयी है तो भगवान् का शरीर तो चिन्मय है, इसलिए यहाँ प्रयुक्त शब्द (विजहावजः) 'विजहौ अजः' का अर्थ छोड़ना नहीं मानना चाहिए | भगवान् ने अपना शरीर छोड़ा नहीं था | संस्कृत व्याकरण के अनुसार धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं; इसलिए 'चिन्मय शरीर' होने के कारण भगवान् उसे छोड़ नहीं सकते, अतः यहाँ 'विजहौ' से मतलब है – 'भगवान् की अंतर्धान-लीला' | इसलिए आचार्यों के अनुसार इस श्लोक को समझकर, तब उसका अर्थ करना चाहिए क्योंकि श्लोक का अर्थ चाहिए | जो सिद्धांत 'चिन्मयत्व' का प्रतिपादन करते हैं, उनको स्वीकार करते हुए, उन्हें लेकर चलना चाहिए | इसीलिए आचार्यों ने ये दो श्लोकों (१/१५/३४ तथा १/१५/३५) को नहीं माना है; अगर कोई इन्हें मानता भी है तो उसे (१/१५/३४) में प्रयुक्त शब्द 'विजहौ' का अर्थ आचार्यों के अनुसार ही करना चाहिए |

उधर विदुरजी भी, जो अत्यंत संयमी थे, कृष्ण में मन को लगाकर 'प्रभास क्षेत्र में अपने शरीर का त्यागकर' अपने लोक को चले गए | द्रौपदीजी ने भी कृष्णगति को प्राप्त किया |

'पांडवों के इस महाप्रयाण' उनकी सद्गति की कथा को सुनकर मनुष्य भक्ति प्राप्त करता है | पांडव श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे, केवल श्रीकृष्ण ही उनके एकमात्र लक्ष्य

गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर **"मान मन्दिर कला अकादमी' की प्रस्तुति नाटिका –**

' 'बाबाश्री' के जीवन की कुछ घटनायें '

(मानमन्दिर आने के बाद 'डाकू जहान से बाबाश्री का सामना' की लीला का एक दृश्य)

अनन्यता की पहिचान

श्रीबाबामहाराज के सत्संग से संकलित

सम्प्रदायों में एक झगड़ा 'स्वकीया-परकीया' को लेकर उठा था। 'स्वकीया' वालों ने 'परकीया' वालों का विरोध किया था, उनकी तीव्र आलोचना किया कि ये लोग असुर हैं क्योंकि 'श्रीजी' में भी कल्पना करते हैं कि उनका विवाह दूसरी जगह हुआ था और फिर भी वह 'श्रीकृष्ण' से प्रेम करती थीं। 'राधारानी' परकीया थीं, इससे स्वकीया वाले बहुत चिढ़े और कहा कि 'राधाकृष्ण' एक हैं और उसमें भेद की कल्पना नारकीयता है; हजारों इसके प्रमाण हैं, नारद पञ्चरात्र में महादेवजी ने कहा है - वह महापापी है जो राधाकृष्ण को अलग समझता है। इस प्रकार स्वकीया वालों ने परकीया का खण्डन किया। यह भी ठीक था, क्या राधारानी श्रीकृष्ण के अलावा किसी दूसरे से प्रेम कर सकती हैं। स्वकीया का खण्डन करने के लिए विश्वनाथ चक्रवर्ती ने शास्त्रार्थ किया तथा परकीया को ही प्रधान रखा –

"न जातु व्रजदेवीनां पतिभिः सह संगमः"।

व्रजदेवियों का अपने पतियों के साथ संगम नहीं हुआ था। इसलिए इस वाक्य को प्रमाण मानकर कि जब राधारानी का दूसरे पुरुष से अंग-संग होगा नहीं, केवल अभिनयमात्र है, लीलामात्र है; इसलिए परकीया सिद्ध हो गया। इस वाक्य का उपयोग किया स्वकीया खण्डन के लिए।

बहुत बारीक बात है, जबकि इस वाक्य का लक्ष्य है कि ब्रजगोपियों को भोग प्राप्त था लेकिन उस भोग को उन्होंने नहीं भोगा। गोपियों जैसा संयम कहीं नहीं है। गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा था कि –

'संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्' ॥

(श्रीभागवतजी १०/२९/३१)

हम विषयों को छोड़कर आयी हैं। विषय क्या है ? अपना पति। पति से मिलना, उसके साथ शयन करना अधर्म नहीं, धर्म है। धर्मपूर्वक विषय प्राप्त हैं, फिर भी हमने उसका त्याग कर दिया। 'सर्वविषयान्' माने सभी धर्म के या अधर्म के विषय हमने छोड़ दिये। इस वाक्य का यह अर्थ है कि इतना संयम था गोपियों में कि अपने पतियों से भी कभी उन्होंने सहवास नहीं किया। लेकिन इस वाक्य का प्रयोग परकीया वालों ने किया तोप का गोला बनाकर 'परकीया' सिद्ध करने के लिए।

आज आध्यात्मिक समाज संकीर्णता में डूब रहा है और नित्यविहार वाले विहारिनदेवजी की एक कड़ी को लेकर बैठे हैं कि उस निकुञ्ज में गोपी-ग्वाल सब विघ्न हैं, वे वहाँ नहीं जाते। इस तरह वे सख्य-रस की लीला नहीं गाते हैं। अन्य गोपियों की लीला नहीं गाते हैं, चाहे भले ही चार घंटे व्यर्थ ही बातें कर लेंगे यह कहकर कि हम निकुञ्ज-उपासक हैं, हम गोपी-ग्वाल लीला को नहीं गाते, ब्रजलीला नहीं गाते; इससे अपराध हो जाता है, भगवल्लीलाओं में अभाव हो जाता है। जबकि भगवान् की हर लीला दिव्य है।

स्वयं श्रीभगवान् ने कहा है –

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

(श्रीगीताजी ४/९)

हमारा हर कर्म, हर लीला दिव्य है। जो इस बात को जानता है, वह शरीर के बन्धन को छोड़कर मेरे पास आता है। यदि भगवान् की लीलाओं में अभाव पैदा हो गया तो सब नष्ट हो गया। इसलिए ऐसी अनन्यता नहीं होनी चाहिए कि भगवल्लीलाओं में अभाव हो जाए। श्रीभागवतानुसार – भगवान् की सभी लीलाएँ दिव्य हैं, किसी भी लीला में हमारा मन लग जाए, किसी भी भाव से लग जाए।

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो ॥
कतमोऽपि न वेनः स्यात् पञ्चानां पुरुषं प्रति।
तस्मात् केनापि उपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥

(श्रीभागवतजी ७/१/३०,३१)

किसी भी तरह से मन भगवान् में लग जाए, किसी भी भाव से लग जाए। इसका प्रमाण है - यज्ञ पत्नियों को कृष्ण-प्रेम कैसे प्राप्त हुआ ? वृन्दावन की मालनियाँ उनके पास फल, पुष्प विक्रय करने जाती थीं और उनसे कृष्ण-चर्चा करती थीं। लीलायें सुनने से ही यज्ञपत्नियों को कृष्णप्रेम

प्राप्त हो गया। इसलिए सभी लीलाएँ दिव्य हैं, किसी भी प्रकार से मन कृष्ण में लग जाये। अब कोई बेचारा सख्य रस का पद गा रहा है या वात्सल्य रस का पद गा रहा है और उसे कोई गाने से रोक दे – नहीं, हम निकुञ्जलीला के उपासक हैं, हमारे यहाँ इस प्रकार की लीलायें नहीं गाईं जाती हैं तो उस बेचारे का मन कृष्णलीला में लग रहा था तो वह भी टूट गया। वह तो उनकी बात है जिनका मन अनवरत श्रृंगारलीला में लग चुका है, उस स्थिति पर पहुँचने के बाद वे ऐसी बात कह रहे हैं; हम उनको गलत नहीं बता रहे हैं। लेकिन हमारी स्थिति यह है कि दिन-रात विषयों में मन लग रहा है। मान लो तुम साधु हो, भोग नहीं भोगते हो तो लड्डू-पेड़ा खाते हो, पैसा रखते हो; ये सब भी तो विषय हैं। अहंता-ममता भी तो विषय हैं। अब देखो कि गोपियों से ज्यादा 'रसिक' कौन है ? आज का निकुञ्जलीला का उपासक पूतना के नाम से चिढ़ जाता है। श्रीमद्भागवत में पूतना-मोक्ष की कथा कहो तो कहेगा कि ये सब क्या कहते हो, ये गलत बात है। जबकि भागवत में रासपंचाध्यायी में आता है –

'कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम्'

(श्रीभागवतजी १०/३०/१५)

रास में श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने पर गोपियाँ श्रीकृष्ण-लीला का अनुकरण करने लगीं, कोई गोपी पूतना बनकर बालकृष्ण बनी गोपिका को स्तनपान कराने लगी, कोई वत्सासुर बन गयी, कोई बकासुर बन गयी और कोई गोपी कालियानाग बन गयी । (भागवत १०/३०/१५-२२) गोपियों ने सब प्रकार की लीलायें की हैं कृष्णान्वेषण में; वे पूतना बनीं, बकासुर बनीं, कालिया नाग बनीं; क्या वे रसिक नहीं थीं ? जो साक्षात् महारास में श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही हैं। लेकिन हम लोग उनके भी बाप बन गये, कहते हैं कि इन लीलाओं को मत गाओ, इससे क्या होता है ? भगवल्लीलाओं में अभाव पैदा होता है और उस अभाव से मनुष्य भगवान् से दूर चला जाता है; ये भागवत में कहा है –

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन -
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥

(श्रीभागवतजी १०/२/३२)

भगवान् और उनकी लीलाओं में अभाव होने पर सीधे पतन हो जाता है। इस तरह भगवान् के चरणों का अनादर हो जाता है और हम समझते हैं हम बड़े रसिक हैं। यही आजकल समाज में हो रहा है। इसलिए हमने सोचा कि 'अनन्यता, संकीर्णता और आसुरी भाव' पर कुछ बोलें, भले ही लोग गाली देंगे और ज्यादा क्या करेंगे लेकिन उनमें से कुछ तो इस बात को समझेंगे कि हाँ 'संकीर्णता' में नुक्सान है। चले हैं भगवत्प्राप्ति करने, अनन्य बनने और संकीर्णता के कारण पतन की ओर बढ़ रहे हैं। इसलिए इसे समझो कि ऐसे रसिक मत बनना कि भगवल्लीलाओं में अभाव हो जाए। दण्ड भोगना पड़ता है भगवल्लीलाओं में अभाव करने का, इससे भगवद्धाम में नहीं जा पाओगे –

यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादात् श्रृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ।
यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारान् तांस्तान् क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ॥

(श्रीभागवतजी ३/१५/२३)

साफ मना किया गया है, तुम चले हो रसिक बनने लेकिन भगवद्धाम की तुम्हें कभी प्राप्ति नहीं होगी; क्यों नहीं होगी ? क्योंकि भगवान् जो अघभिद (पापनाशक) हैं, उनकी लीलाओं के वर्णन को छोड़कर जो इधर-उधर की बात सुनते हो, अन्य विषय-वार्त्ताओं को सुनते हो, अन्य लीलाओं का खण्डन, उनमें अभाव; ये सब कुकथायें हैं, ये तुम्हारी बुद्धि को नष्ट कर देंगी। अभागे लोग सुनते हैं इन भेद की बातों को; ये मनुष्य की बुद्धि के सार को खींच लेतीं हैं। बड़े दुःख की बात है कि ये मनुष्य को अन्धकार में फेंक देती हैं। घर से निकले थे भजन करने प्रभु को प्राप्त करने के लिए लेकिन ऐसे अन्धकार में पहुँच गये, जहाँ से फिर निकल नहीं पायेंगे। 'श्रीभगवद्धाम' में वही पहुँचेगा, उसी को भगवान् की प्राप्ति होगी -

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या
दूरे यमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ।
भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुराग
वैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥

(श्रीभागवतजी ३/१५/२५)

जिसको भगवान् की प्रत्येक लीला को सुनकर चाहे वह सख्य रस की हो, चाहे वात्सल्य रस की हो, दास्य रस की हो, चाहे शान्त रस की, चाहे श्रृंगार रस की हो, कोई सी भी लीला हो, उसको सुनकर शरीर में रोमांच हो जाए, रोम-रोम पुलकित हो जाये, नेत्रों से आँसू गिरने लगें । इसलिए जब 'अनन्यता' संकीर्णता में बदल जाती है तो अभाव पैदा करा देती है । भगवल्लीला में इतना अभाव हो जाता है कि क्या बतायें ?

एक बार किसी रसिक से बातचीत करते समय हमारे मुख से रामायण की चौपाई निकल गयी तो उन्होंने हमसे कहा कि अरे ! हम तो तुमको श्रीजी-ठाकुरजी का बहुत बड़ा रसिक समझते थे, लेकिन अभी तुम्हारी रामायण ही नहीं छूटी। तुरंत हम समझ गए कि रसिक बनने पर यह बीमारी लग जाती है । ये आजकल के तथाकथित रसिक लोग श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, रामचरितमानस आदि भगवल्लीलात्मक ग्रंथों को छूना भी पाप समझते हैं जबकि जैसा कृष्ण-रस का वर्णन श्रीमद्भागवत में है, वैसा संसार के किसी ग्रन्थ में नहीं है । रामचरितमानस को भगवान् विश्वनाथजी ने सब शास्त्र-पुराणों से ज्यादा मान्यता दी और उस पर 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' लिखकर उसे प्रमाणित किया और हम जैसे आजकल के रसिक इन भगवद्रस युक्त ग्रंथों का खण्डन करते हैं। एक कहावत है – **'क्यों ठोट खोपड़े मारे'** किसी ठोट से क्या खोपड़ी मारें । ये सब ठोट लोग हैं, इनको न हम अपना विचार समझा सकते हैं और न इनका विचार हम समझ सकते हैं । इसलिए चुप रहना ही उचित है, वे बेचारे जैसे अनन्य बन गये हैं, उन्हें बने रहने दो। उन्हें हम संकीर्णता से हटा नहीं सकते, यहाँ तक कि भगवान् भी नहीं हटा सकते, भगवान् की यदि विशेष कृपा हो जाये तो बात अलग है । स्वकीया-परकीया का बहुत पुराना विवाद चल रहा है । इसलिए जो वास्तव में भगवान् का प्रेम चाहता है, भगवद्रस चाहता है, उसे इन विवादों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए । यदि तुम्हें स्वकीया अच्छी लगे तो उसे गाओ, परकीया लीला अच्छी लगती है तो उसे गाओ, तुम्हें जिसमें निष्ठा है उसे गाओ लेकिन दूसरी लीलाओं में अभाव नहीं करो । क्योंकि भगवान् ने सब प्रकार की लीलायें की हैं और सभी परम दिव्य हैं – **एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।**
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः
शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥

(श्रीभागवतजी १०/३३/२६)

सभी प्रकार की लीलाओं में जितने भी रस हैं, सब आ गये - स्वकीया-परकीया, दाम्पत्य, नित्य दाम्पत्य, कुञ्ज-निकुञ्ज आदि। आजकल के लोगों ने पचासों भेद निकाल लिये हैं । कुञ्ज को भी अलग-अलग कर दिया है । नित्यविहार भी छः प्रकार का होता है – एक तो यह है कि सामान्य लोग इतना ही जानते हैं कि कुञ्ज में ठाकुरजी-श्रीजी मिलते हैं। दूसरा यह कि वे निकुञ्ज में ही रहते हैं, निकुञ्ज के बाहर नहीं जाते हैं। तीसरा यह कि उनके पास सखियाँ भी नहीं जाती हैं। चौथा यह कि वे शय्या पर ही रहते हैं, ठाकुर जी शय्या पर से ही नहीं उतरते आदि, इस प्रकार छः प्रकार के भेद बताये। तो इस तरह तो कई प्रकार का नित्यविहार बता दें, ये क्या है ? बाल की खाल निकालना है। ये सब संकीर्णता है, जितना बढ़ाओ बढ़ती जायेगी । हम तो एक बात जानते हैं जो श्रीमद्भागवत में कहा गया है –

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ७/१/३१)

किसी भी प्रकार से मन श्रीकृष्ण में लग जाए – किसी भी रस की लीला के गाने से लगे, काम भाव से मन लग जाए, क्रोध से मन लग जाए, भय से मन लग जाए, बैर से मन लग जाए लेकिन अभी तो हमारे मन में संसार घुसा हुआ

निर्मत्सर जनों को ही भागवत-धर्म का सम्यक् लाभ मिलता है।

है। संसार ही नहीं निकलता है तो कृष्ण में कहाँ से मन लगेगा। इसीलिये इन सब साम्प्रदायिक-विवादों में नहीं पड़ना चाहिए। भगवान् की सभी लीलायें दिव्य हैं, जितना बन सके, उन्हें गाना चाहिए। किसी तरह से भी श्रीकृष्ण से जुड़े रहो।

एक में भाव और कहीं अभाव नहीं, ये 'अनन्यता' है।
एक में भाव और अन्यत्र अभाव होना, ये 'संकीर्णता' है।

साक्षात् गोविन्दाराधन 'गौ-सेवा'

सच तो यह है कि गाय और गोविन्द एक ही है|

बस अन्तर इतना ही है कि गोविन्द के रूप में गोविन्द दुर्लभ हैं पर गाय के रूप में गोविन्द अत्यन्त सुलभ हैं| क्या आपने कभी भगवान् को देखा है ? यदि नहीं, तो देख लीजिए इस चलते-फिरते भगवान् को जो आज दुर्भाग्य से आपके घरों के 'कूड़े के ढेर' पर खड़ा है अथवा जीवन भर Dairy में खड़े होकर दूध पिलाने के बाद कत्लखानों में भेज दिया जाता है, उसमें भी उन मासूम बछड़ों का तो कोई भविष्य नहीं, ये तो बेचारे पैदा होते ही घर से बाहर कर दिए जाते हैं या फिर बधिकों को सौंप दिए जाते हैं|

'गौ-सेवा' न करना ही गौ-हत्या को बढ़ावा देना है| आज धर्म-प्राण देश में गौ-हत्या जैसा महापाप हम सबके आगे प्रश्नवाचक है ...? आखिर कब तक हम अपने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य अथवा धर्म-निरपेक्षता की आड़ में गौ-वध से कलंकित मुँह को छिपाते रहेंगे | यदि सच्चे भारतीय हैं, कृष्ण-भक्त हैं तो क्यों भूल गए कि श्रीकृष्ण ने गौ-सेवा को ही सर्वोच्च धर्म बताया|

'ब्रजवासी' गौभक्त थे, जिन्होंने वृषभ रूप में आये अरिष्टासुर की हत्या करने पर साक्षात् श्रीकृष्ण तक का बहिष्कार कर दिया | महाराज परीक्षित जब अपनी दिग्विजय को गये, उन्होंने कलियुग के प्रभाव से धर्म के प्रतीक वृषभ पर अत्याचार देखा, उसके तीन पैर कटे थे | महाराज परीक्षित ने उसके कष्ट का निवारण किया और गौ-वंश को सुरक्षित किया, उसके प्रभाव से राज्य समृद्धशाली हुआ और आज राष्ट्र में अनुपयोगी मानकर सबसे अधिक बछड़े और वृषभों की हत्या हो रही है और सम्पूर्ण शासन व्यवस्था मौन है; राजा थे परीक्षित, कलियुग ने वृषभ रूपी धर्म पर प्रहार किया तो उसे खदेड़ दिया | आज 'श्रीमाताजी गौशाला' ऐसे ही कत्लखानों से छुड़ाये गए हजारों वत्सों, वृषभों की सेवा द्वारा अनूठा आदर्श स्थापित कर रही है|

'वृषभ' साक्षात् धर्म है | उपनिषद् में वर्णन है – 'सत्यकाम जाबाल को वृषभ की सेवा से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो गई' | वृषभ जितने पुष्ट होंगे, उतना ही गौवंश बढ़ेगा, गौवंश के बढ़ने से राष्ट्र समृद्ध होगा और वृषभों की उपेक्षा राष्ट्र में इसी तरह दुर्दिनों को आमंत्रित करती रहेगी | हम अपने देश व विश्व की समृद्धि व शान्ति की कल्पना तभी कर सकते हैं, जब बछड़े व वृषभों की सम्मान के साथ रक्षा करने का संकल्प लें, जिससे गौवंश समृद्ध हो|

भारतवर्ष में आज 'माताजी गौशाला' ही है जिसमें बछड़े और वृषभों की संख्या लगभग ३०-३५ हजार तक है, जिनका पालन-पोषण बड़े सम्मान से किया जाता है|

आज आवश्यकता है समाज के सभी वर्गों को आगे आने की | इसी राष्ट्र की धरती ने चक्रवर्ती सम्राट दिलीप से लेकर शिवाजी छत्रसाल, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह, राजा रणजीत सिंह, मंगल पाण्डे आदि परम गौ-भक्तों को जन्म दिया जो गौरक्षा के लिए सर्वात्मसमर्पण कर गये; वही खुमारी आज भी इस धरती में है|

लोगों में श्रद्धा है, आस्था है और सामर्थ्य भी है किन्तु दुर्भाग्य से सक्रियता नहीं है; वे चाहते तो हैं कि गौ-रक्षा हो किन्तु इसके लिए तत्पर नहीं हैं | हमें अपने में एक सक्रियता पैदा करनी होगी, यदि हम सक्रिय हैं तो हम स्वयं में एक संगठन हैं| यदि हम गौरक्षा के बिन्दु को लेकर वास्तव में गम्भीर हैं, चिन्तित हैं तो आइये, अभी से इस महान कार्य के प्रति सक्रिय होकर लग जाएँ|

'अभाव में भी भाव करना' यही सच्ची उपासना है।

परम कृपामय 'कृष्णावतार'

बाबाश्री के सत्संग (११/७/२०१३) से संकलित

भक्ति के मूलभूत सिद्धांतों को छोड़कर यदि मनुष्य चलता है तो वही बातें आखिर तक नुक्सान करतीं हैं, जैसे - महारास में 'भगवान्' गोपियों को छोड़कर के चले गये | श्रीमद्भागवत में इसका स्पष्ट उल्लेख है –

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥

(श्रीभागवतजी १०/२९/४८)

एक तो रास में पहुँचना ही बहुत कठिन है, भगवान् शंकर तक को गोपियों ने रास में प्रवेश करने से रोक दिया था, अन्त में इसके लिए उन्हें गोपीवेश धारण करना पड़ा | साक्षात् गोपी बन जाने पर भी सतत सावधानी की परमावश्यकता है |

भागवत के अनुसार जो ब्रजांगनाएँ रास में पहुँचने वाली थीं, पहले तो उनके सामने भी अन्तराय (श्रीकृष्ण-प्राप्ति में बाधक तत्त्व) उपस्थित हुए और उन ब्रजदेवियों ने अपने शरीरों का त्याग कर दिया, जब समस्त बंधन नष्ट हो गए, तब जाकर उन्होंने श्रीकृष्ण-प्राप्ति की –

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि सङ्गताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥

(श्रीभागवतजी १०/२९/११)

रास की प्राप्ति अन्य साधकजनों को कितने मुश्किल से हुई है, इसके बारे में पद्मपुराण आदि में वर्णन है कि बड़े-बड़े ऋषियों ने रास की प्राप्ति के लिए अनेकों कल्पों तक कठोर तप किया | श्रुतियों तक ने रास की प्राप्ति हेतु तप किया | इस प्रसंग की विस्तृत कथा का गर्गसंहिता में उल्लेख किया गया है कि सृष्टि के आदिकाल से भगवान् के रसमय स्वरूप की प्राप्ति के लिए श्रुतियाँ प्रयत्न कर रही थीं | श्रीभागवतजी में भी वेदस्तुति में इस ओर संकेत किया गया है | इसके अतिरिक्त भगवान् के जितने भी अवतार थे, यहाँ तक कि पृथु अवतार में उनके रूप से मोहित और वर-प्राप्त कर नारियाँ गोपी बनकर ब्रज में अवतरित हुई हैं | लक्ष्मीजी की सहचरियाँ भी गोपी बनकर ब्रज में प्रकट हुईं | इतना ही नहीं, शेषजी के निकट निवास करने वालीं नागकन्याएँ भी वर प्राप्त करके गोपी रूप से ब्रज में आयीं | नर-नारायण के रूप से मोहित उनसे वर- प्राप्त की हुईं नारियाँ भी गोपी रूप से ब्रज में उत्पन्न हुईं | वामन अवतार के समय सुतल लोक की स्त्रियाँ उनसे वर- प्राप्त कर गोपिका रूप से ब्रज में आयीं | रामावतार में तो टोल की टोल नारियाँ जैसे अवध कीं, जनकपुर की स्त्रियाँ, पंचवटी की भीलिनियाँ तथा दण्डकारण्य के ऋषि-मुनि भी गोपीरूप से कृष्ण-प्राप्ति हेतु ब्रज में उत्पन्न हुए | यहाँ तक कि अयोध्या में सीताजी के त्याग के बाद रामजी ने अनेकों यज्ञ किये –

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे ।
दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे ॥

(श्रीरामचरितमानसजी, उत्तरकाण्ड - २३)

ऋषियों की सम्मति से जितने यज्ञ हुए, रामजी के वामांग में उतनी ही सीताजी की स्वर्ण-प्रतिमाएँ स्थापित की गईं, उनमें प्राण-प्रतिष्ठा की गई, वे यज्ञ सीताएँ अमोघ थीं | यज्ञ के बाद श्रीरामजी के पास वे गयीं तो एकपत्नी व्रतधारी प्रभु ने उन्हें ग्रहण करने में असमर्थता दिखाई फिर उन्हीं से वर-प्राप्त कर वे समस्त यज्ञ-सीतायें भी श्रीरामजी से गूढ़ शास्त्रार्थ करके उनकी प्राप्ति हेतु द्वापर में गोपियों के रूप में प्रकट हुईं | इस वृत्तांत-वर्णन का कारण यह है कि अनेकों भगवदावतारों के पश्चात् इन देवियों, ऋषियों और श्रुतियों को रासरस की प्राप्ति हुई, फिर भी उनके हृदय में कुछ प्रतिबन्धक तत्त्व शेष रह गये थे, उसके निर्मूलन हेतु कुछ गोपिकाओं को अपना शरीर तक त्याग करना पड़ा | पद्मपुराण में कथा है कि एक बार नारदजी दण्डकारण्य में गये तो उन्होंने देखा कि वहाँ पर एक हड्डियों का विशाल पर्वत है और दो ऋषि तपस्या कर रहे हैं | भगवान् नारायण ने नारदजी को बताया कि ये ऋषि बहुत जन्मों से तपस्या कर रहे हैं और तप के प्रभाव से इनकी हड्डियाँ भी नष्ट नहीं हुईं हैं | जब-जब इनका जन्म होता है, ये फिर से तपस्या करने लग जाते हैं, अतः इनकी हड्डियों का विशाल पर्वत बन गया है, इनको तप करते हुए अनेकों जन्म व्यतीत हो चुके हैं | श्रीकृष्णरास-रस की प्राप्ति ही इनके इस कठोर तप का मुख्य उद्देश्य है | नारदजी ने नारायण भगवान् से कहा कि जब ये इसी उद्देश्य से कठोर तप में निरत हैं तो आप इनकी अभिलाषा की पूर्ति क्यों नहीं करते हैं? भगवान् नारायण बोले - ब्रजरस अथवा रासरस प्रदान करना मेरे वश

. राग और द्वेष चले जायें तो बहत जल्दी उपासना सिद्ध हो जाती है |

में नहीं है, यह तो केवल उन ब्रजवासियों को ही उपलब्ध होगा, जिन्हें रासेश्वर श्रीकृष्ण चाहते हैं | इस प्रकार शास्त्रों में ऐसे कितने ही उदाहरण हैं कि कितनी कठिनाइयों के पश्चात् भक्तों को रासरस की प्राप्ति हुई, फिर भी उनके हृदय में कुछ प्रतिबन्धक तत्त्व, बंधन के कारण शेष रह गये थे, देह-त्याग करने के बाद ही वे नष्ट हुए | शुकदेवजी द्वारा इस प्रसंग का रहस्योद्घाटन करते ही परीक्षितजी को शंका हो गयी और उन्होंने प्रश्न कर दिया कि जिस बंधन का उन्मूलन अनेक जन्मों तक कठोर तप करने पर भी नहीं हो पाया, वही बंधन ब्रजगोपियों द्वारा जार-बुद्धि से भगवान् का स्मरण करने पर कैसे समाप्त हो गया?

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥
(श्रीभागवतजी १०/२९/१२)

परीक्षितजी ने प्रश्न किया – भगवन् ! गोपियाँ तो श्रीकृष्ण को अपना कान्त (प्रियतम) ही मानती थीं, ब्रह्म नहीं मानती थीं और बिना ब्रह्म माने ही उन्होंने गुणमय शरीरों का त्याग कैसे कर दिया? यह शंका उचित थी क्योंकि श्रुति कहतीं हैं – **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' |** ब्रह्म को जानने के बाद ही जीव 'ब्रह्म' बनता है | 'ब्रह्म' गुणातीत वस्तु है, प्राकृत वस्तु नहीं है तब गुणातीत वस्तु के प्रति जब तक मनुष्य के हृदय में दिव्य भाव नहीं उत्पन्न होगा, जब तक वह ब्रह्म को ब्रह्मरूप में नहीं जानेगा तो ब्रह्म कैसे बनेगा? ब्रह्म को यदि गोपियाँ गुणमय भाव से (प्रियतम मानकर) स्मरण कर रहीं थीं तो फिर उनकी मुक्ति कैसे हो गयी? क्योंकि श्रुति के प्रमाणानुसार तो ब्रह्म को जानने के बाद मनुष्य गुणातीत होकर ब्रह्मरूप होता है, तो यदि गोपिकाएँ ब्रह्म को प्राप्त हो गयीं और उनके गुणमय भाव (कृष्ण को प्रियतम मानना) बने ही हुए हैं तो ये दोनों परस्पर विपरीत बातें कैसे सम्भव हैं? परीक्षित द्वारा इस उचित शंका को उठाये जाने पर शुकदेवजी को रासलीला के कथा-प्रवाह को बीच में ही रोककर उनकी शंका का समाधान करते हुए कहना पड़ा –

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥
(श्रीभागवतजी १०/२९/१४)

परीक्षित ! भगवान् ने देखा कि 'जीव' गुणमय है, गुणों को यह छोड़ नहीं सकता; ऐसी अवस्था में उसका कल्याण कैसे होगा ? गुणमय भावों से 'जीव' अलग नहीं हो सकता | तब भगवान् का कृपामय स्वरूप है, इसलिए वह प्रकट हुए, क्यों? **'नृणां निःश्रेयसार्थाय'** ताकि जीवों का कल्याण हो, इसलिए भगवान् स्वयं प्रकट हुए जो गुणातीत हैं | 'भगवान्' जीव से बोले कि अब तुम मुझे प्राप्त कर लोगे क्योंकि भले ही तुम्हारे गुणमय भाव बने रहें, मैं आ गया हूँ और तुमको गुणमय भावों के सहित लेकर जाऊँगा | गुणमय भाव क्या हैं? वे हैं – काम, क्रोध, स्नेह, संसारी ममतायें, भय आदि | श्रीभगवान् ने कहा कि गुणमय भावों के साथ ही तुमको मुझमें तन्मयता की प्राप्ति हो जाएगी, मैं इसलिए प्रकट हुआ हूँ |

अतः इस बात को समझना चाहिए कि भगवान् ने अवतार क्यों लिया? 'काम भाव' गुणमय भाव है परन्तु ब्रजलीला में गोपिकाएँ श्यामसुंदर से कहती हैं – **नित आयो कर लाला तोते सब राजी नित आयो कर ||**
डोरी डालूँगी महल चढ़ अईयो रसिया डोरी डालूँगी ||
ये सब गुणमय भाव हैं, इसके गाने से ही भगवान् की प्राप्ति हो जाएगी | 'भय' भी गुणमय भाव है किन्तु भगवान् की भयलीला गाने से उनकी प्राप्ति हो जाएगी | कुंतीजी ने अपनी स्तुति में इस बात को कहा है –

श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥ (श्रीभागवतजी १ /८/३६)

जो भगवान् की लीला व गुणों का श्रवण करते हैं, उसका गान करते हैं, बारम्बार उसका पाठ करते हैं, वे शीघ्र ही भगवान् को प्राप्त कर लेंगे | गुणमय भावों से भगवान् की प्राप्ति जल्दी होगी और यदि 'ब्रह्म' को ब्रह्म जानकर उसका स्मरण किया जायेगा तब उसकी प्राप्ति में फिर भी देर लगेगी | कुन्तीजी अपनी स्तुति में कहतीं हैं – प्रभो ! जो आपके गुणमय भावों की लीला का गान करेगा, वह शीघ्र ही आपके चरणकमलों का दर्शन करेगा | उस लीला का दर्शन करके तो मुझे भी मोह हो रहा है – **गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद् या ते दशाश्रुकलिलाञ्जन सम्भ्रमाक्षम् ।**

यदि किसी की निन्दा सुनोगे तो एक दिन मन पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा

वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥ (श्रीभागवतजी १/८/ ३१) इस श्लोक की टीका में आचार्यों ने लिखा है कि मृदभक्षणलीला (ब्रजरज-खाना) तो महावन में हुई थी फिर उसे कुन्ती ने कैसे देखा? कुन्ती का वैशिष्ट्य तो महाभारत के समय प्रकट हुआ है | आचार्यों ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि कुन्ती का जन्म मथुरा में हुआ था, वह मथुरा की ही बेटी थीं, पीछे उनका विवाह हस्तिनापुर में हुआ था | वह वसुदेवजी की बहन थीं | वसुदेव और नन्दबाबा की आपस में मित्रता थी | वसुदेवजी की १८ पत्नियाँ थीं, उनमें रोहिणी और देवकी भी थीं | देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का प्राकट्य हुआ, जिनके द्वारा कंस की मृत्यु होनी थी | इसलिए कंस ने देवकी-वसुदेव को कारागार में बंदी बना लिया | नन्दबाबा से घनिष्ठ मित्रता होने के कारण वसुदेवजी ने रोहिणी को नन्दबाबा के घर में रख दिया क्योंकि रोहिणी भी गर्भवती थीं | वसुदेवजी ने विचार किया कि देवकी की संतानों का तो कंस वध कर डालेगा, इस स्थिति में मेरा वंश कैसे चलेगा? रोहिणी के सुरक्षित रहने पर ही मेरा वंश चल सकता है, अतः उन्होंने रोहिणी को अपने विश्वसनीय मित्र नंदबाबा के यहाँ भेज दिया | 'रोहिणी' कुन्ती की भाभी लगतीं थीं, इसलिए अपनी भाभी का समाचार पूछने के लिए वह गोकुल-महावन, नन्दगाँव जाया करतीं थीं; उस समय उन्होंने कन्हैया की बाललीला देखी थी कि किस प्रकार दधि- माट फोड़ देने और माखन-चोरी करने पर यशोदाजी कन्हैया को धमकातीं हैं तथा ऊखल से बाँध देतीं हैं | बालकृष्ण की भयलीला को उन्होंने अत्यन्त विस्मय से देखा और उसका गान किया | ब्रजवासी भी इस लीला को गाते हैं –

तेरे लाला ने माटी खाई यशोदा सुन माई || अद्भुत खेल सखन संग खेल्यो, इतनों सो माटी को डेलो | तुरत श्याम ने मुख में मेलो, मैया याने गटक-गटक गटकाई ||

दाऊजी और ग्वालबाल यशोदा मैया से शिकायत करते हैं – मैया, कान्हा ने हमारे सामने मिट्टी का एक ढेला खाया है | यशोदा यह सुनकर कन्हैया को डाँटती हैं - **क्यों लाला तेने खाई री माटी, माखन को कबहूँ नाय डांटी | धमकावै यशोदा ले सांटी, तोय नेक दया नाय आई ||**

यह स्थिति कुन्ती ने देखी थी और उसी का गान उन्होंने भागवत के इस श्लोक (१/८/३१) में किया है | कुन्ती 'कृष्ण' से कहतीं हैं – हे नाथ ! तुमने अपराध किया था क्योंकि माँ की दृष्टि में मिट्टी खाना ठीक नहीं है | जैसा कि प्राकृत जगत में कहावत है कि मिट्टी पेट में जाकर कीड़े उत्पन्न कर देती है, इसलिए मिट्टी खाना ठीक नहीं है | इसके अतिरिक्त भी कान्हा ने अपराध किया कि मैया के दधि-माखन के माँट-मटका फोड़े थे | इसलिए यशोदा ने रस्सी हाथ में ली –

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ।
इयेष किल तं बद्धुं दाम्नातद्वीर्यकोविदा ॥

(श्रीभागवतजी१०/९/१२)

यशोदाजी अपने लाला के पराक्रम को नहीं जानतीं थीं | 'ब्रह्म' को भला कोई बाँध सकता है किन्तु यशोदाजी ने विचार किया कि इसको बाँधना है –

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने ॥

(श्रीभागवतजी१०/९/१ ८)

भगवान् ने भी बंधन स्वीकार किया –

एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥

(श्रीभागवतजी १०/९/१९)

इस प्रकार भगवान् ने दिखाया कि मैं अपने दासों के आधीन हूँ और वह यशोदाजी की रस्सी से ऊखल में बँधे | उस समय बालकृष्ण की जो दशा थी, उनकी आँखें भय से घबरा रहीं थीं कि अब मैया के डंडे का प्रहार होगा | कन्हैया की इस भय-विह्वल दशा का कुन्तीजी ने दर्शन किया कि उनके नेत्रों से भयवश अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं और हाथों से काजल लगी अपनी आँखों को मल रहे हैं | अपना मुख उन्होंने नीचे कर लिया है, भय की भावना से स्थित हैं | कुन्तीजी कहतीं हैं कि जिसके भय से काल भी भयभीत रहता है, वह स्वयं मैया के सामने भय कर रहा है; ऐसी लीला को देखकर स्वयं मुझे भी मोह होता है | अब प्रश्न है कि भगवान् ने ऐसी लीला क्यों की? कुन्तीजी इसका उत्तर देती हुईं कहती हैं –

भारावतारणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ |
सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ||

(श्रीभागवतजी १/८/३४)

भक्तों के दर्शनमात्र से पाप नष्ट होकर भवबन्धन कट जाता है |

कुछ विद्वान ऐसा कहते हैं कि ब्रह्माजी ने भगवान् से प्रार्थना किया कि पृथ्वी असुरों के भार से बोझित हो रही है, जैसे - समुद्र में नाव डगमगाने लगती है तो उसका बोझ दूर करने के लिए आपने अवतार ग्रहण किया – **भवेस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः | श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ||**

(श्रीभागवतजी १/८/३५)

किन्तु यह बात छोटी-सी है, भगवान् के अवतरित होने का मुख्य कारण यह है कि जीव संसार में कष्ट पा रहा है, वह माया की कामना से भोग चाहता है, इन्द्रियभोग चाहता है और कामनापूर्ति के लिए जो वह कर्म करता है, उसके कारण जीवनभर और अनन्तकाल तक कष्ट पाता रहता है | कष्ट क्यों पाता है? क्योंकि अविद्या से कामना उत्पन्न होती हैं और कामनाओं के कारण काम-सम्बन्धी कर्म करता है, भोग भोगता है, ऐसी स्थिति में अविद्या ग्रसित यह जीव सदा ही ऐसा करता रहेगा, न तो उसकी कामनाएँ नष्ट होगीं और न ही कामना-सम्बन्धी कर्म ही नष्ट होगें क्योंकि इसके मूल में अविद्या है | जब तक अविद्या है, तब तक कामना है और जब तक कामना है, तब तक उसकी पूर्ति हेतु कर्म हैं और जब तक कर्म हैं, तब तक जीव सदा ही कष्टों से पीड़ित रहेगा | कामकृत कर्म और कर्मकृत, बीज से पेड़ और पेड़ से बीज; यह श्रंखला अनादिकाल से चलती आ रही है, अतः यह तीनों नष्ट नहीं हो सकते - न तो अविद्या नष्ट होगी, न तो कामना नष्ट होंगी और न काम-सम्बन्धी कर्म ही नष्ट होंगे | इसका परिणाम क्या होगा? सभी जीव कष्ट पा रहे हैं, न तो वे कामना छोड़ सकते हैं और न ही कामना सम्बन्धी कर्म छोड़ सकते हैं क्योंकि यह माया का बंधन है | अतः भगवान् ने विचार किया कि मैं ऐसी लीला करूँ जिसको अविद्या ग्रसित जीव समझ सकें, जैसे – 'माखनचोरीलीला' को सभी समझ सकते हैं, इसके लिए वेद पढ़ने अथवा व्याकरण का अध्ययन करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि चोरीलीला समझने के लिए पाणिनि का व्याकरण पढ़ो | एक मूर्ख आदमी भी समझ लेता है कि चोरी क्या है अथवा भगवान् ने गोपियों के साथ रास किया तो यह लीला एक मूर्ख भी समझ जाएगा | प्रत्येक आदमी जो संसार में फँसा हुआ है, वह बेचारा कुछ नहीं कर सकता, तो उन जीवों को भव-बंधन से मुक्त करने के लिए भगवान् ने ऐसी अति सरल व सरस लीलाएँ कीं जो सहज में सभी प्राणीमात्र को समझ में आ जाएँ; इन लीलाओं के श्रवण और गान द्वारा बहुत शीघ्र भगवान् मिलेंगे और जो ब्रह्म को ब्रह्म समझते हैं उन्हें विलम्ब से भगवान् की प्राप्ति होगी | भगवान् ने जीव से कहा कि यदि तुम कामी हो तो कोई बात नहीं, मेरी लीला गाओ | यदि तुम क्रोधी हो, तब भी कोई बात नहीं, मेरी लीलाएं तुम जैसे लोगों के लिए ही बनायी गई हैं | तुम डरपोक हो तो कोई बात नहीं, तुम मेरी भय की लीलाओं को गाओ | ये बात कुन्ती जी ने कहा | केवल साधु बन जाने से ही भगवान् नहीं मिलते |

भागवत में कहा गया है –

गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् । मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥

(श्रीभागवतजी ४/३०/१९)

भले ही तुम गृहस्थ जीवन में चले गये हो किन्तु गृहस्थ में रहकर चोरी आदि पाप कर्म मत करो; सत्कर्म करो | जो लोग गृहस्थ में रहकर दिन-रात भगवान् की लीलाओं को गाते हैं, कृष्ण-गुणगान (श्रीकृष्ण-संकीर्तन आदि) करते हैं, उनके लिए 'घर' बंधन नहीं है; वे बहुत जल्दी मुक्त हो जायेंगे | कथनाशय है कि ऐसे गृहस्थ मत बनो कि भगवान् की लीला ही मत गाओ, भगवान् को ही भूल जाओ, तब तो फिर कोई कल्याण नहीं होगा | फिर तो तुम कभी भी मुक्त नहीं हो पाओगे, सदा कष्ट पाओगे | अतः कृष्ण-गुणगान करना ही विशुद्ध भक्ति है |

भोगी, पापी लोग हजार मिल जाएँ तो कोई हर्ज नहीं है लेकिन एक निन्दक मिल गया तो तुम्हारे शीश पर करोड़ों पहाड़ों के समान पाप पटक देगा | 'निन्दक' के शीश पर करोड़ों पापों के पहाड़ होते हैं, यदि पाँच-दस मिनट ही तुम्हारे पास बैठेगा तो २-४ लाख पाप के पहाड़ तो फेंक ही देगा तुम्हारे सिर पर | तुमने पाप किया नहीं और मुफ्त में पापो का पहाड़ तुम्हारी खोपड़ी पर आ जायेगा, इसलिए सदा सावधान रहें – 'निन्दक के पास कभी भी नहीं बैठना चाहिए |'

सच्चे ब्रजोपासक संत 'श्रीसखीशरणजी'

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (१५/१/२०१४) से संग्रहीत

बाबाश्री के शब्दों में – 'सखीशरणजी' एक बहुत बड़े ब्रजोपासक थे | किसी भी ब्रजवासी से उनका आज तक कलह नहीं हुआ | सभी में श्रीजी का भाव रखते थे; मानमन्दिर की जितनी बालिकाएँ हैं, सब जानती हैं और उनका ऐसा सुन्दर आचरण, व्यवहार आजीवन रहा, इसलिए वे सच्चे ब्रजभूमि के आराधक थे | जब हम ब्रज में आये थे तो हमारे बाबा (प्रियाशरणजी महाराज) ने शिक्षा दिया था – "ब्रजवासियों को कृष्ण मानना, इष्ट मानना, बस यही ब्रज की उपासना है |" जो ब्रजवासी क्रूर हैं, पापी हैं दिखाई पड़ रहा है, देखने योग्य नहीं हैं, उनका नाम लेने योग्य नहीं हैं, उनको भी देखकर के अपनी इष्ट-बुद्धि रखना, इस ब्रज-रहनी के भाव में 'सखीशरणजी' उत्तीर्ण हुए | एक सच्चा ब्रज-उपासक चला गया, उसकी सेवा के लिए मैं कुछ शब्द बोलने आया हूँ और (मैं) न किसी ब्रजवासी का गुरु हूँ, न किसी का मार्गदर्शक हूँ, ये सब ब्रजवासी नित्य हैं | ब्रजवासियों को कृष्ण मानना, इष्ट मानना यही ब्रज- उपासना है | सखीशरणजी महाराज एक सच्चे ब्रज- उपासक संत थे |

विहारिन देव जी, जो साक्षात् बिहारीजी का दर्शन करते थे, उन्होंने लिखा है –

"हौं ब्रजवासिन को पालो पिल्ला |"

सबसे छोटी से छोटी सेवा लेना ही वास्तविक सेवा है | सेवा श्रीकृष्ण ने की है –

"राजसू यज्ञ युधिष्ठिर कीन्हों, तामें जूँठ उठाई |"

भाव भी एक तरंग है, इस तरंग का बहुत बड़ा विस्तार है, भाव की तरंगें भगवद्धाम तक जाती हैं | 'भाव-तरंगें' भगवान् जानता है | जहाँ भावयोग है, वहाँ भगवान् रहता है और प्रकट भी वहीं होता है भक्तों की भावना के अनुसार; ये भाव-राशि श्रीजी देती हैं, इस (भाव-राशि) की स्वामिनी राधारानी (आह्लादिनी शक्ति, महाप्रेम जहाँ से उत्पन्न हुआ) हैं | अनन्त संसार में जो कुछ भी प्रेम है, स्नेह है, आनन्द है उसकी मूल हैं – राधारानी | राधारानी के आने से सारा ब्रज, सारा संसार 'प्रेम' से भर गया | **'बरसाने'** से ही रस गया वृन्दावन में –

"सुभग गोरी के गोरे पाँय |
जाके परस सरस वृन्दावन, बरसत रसनि अघाय |"

(श्रीहरिरामव्यासजी)

जब वृषभानुनन्दिनी ने 'वृन्दावन' को छू दिया तो वहाँ रस आया |

ये 'मुरलीजी' कथा कहती हैं, यह श्रीजी की कृपा है | मैंने इन्हें न पढ़ाया, न लिखाया; मैं गुरु बनने योग्य नहीं हूँ; लेकिन फिर भी इसी भाव से मैं आया हूँ कि आज सखीशरण जैसे उपासक, अब तो वे संसार से चले गये, उनकी सेवा के लिए दो अक्षर बोलने आया हूँ ...| इसलिए जाने क्यों गला रुँध गया (गला भर आया), अपने- आप आँसू आने लग गए, बहुत रोकने का प्रयत्न किया लेकिन सच्चाई रुक नहीं पायी; एक उपासक चला गया यहाँ से, संत चला गया | पचासों साल यहाँ रहे, किसी ब्रजवासी से उन्होंने कड़ुवा (कठोर) व्यवहार नहीं किया, उसको 'उपासक' कहते हैं | हम लोग क्या उपासना कर सकते हैं ? केवल उपासना के नाम पर अपना उदर पोषण करते हैं | उपासक तो प्राचीन काल के महापुरुष थे, जैसे –विहारिनदेवजी, स्वामी हरिदासजी के प्रथम शिष्यों में थे, बिट्ठलविपुलदेवजी के समय ही स्वामीजी के शरणागत हुए और साक्षात् बिहारीजी का दर्शन करते थे, उन्होंने लिखा है – "हौं ब्रजवासिन को पालो पिल्ला" | अपने-आपको कुछ भी न मानना अर्थात् सर्वथा अहं-शून्य अन्तःकरण हो जाना और चराचर जीवों में इष्ट-भाव रखना ही सच्ची ब्रजोपासना है, इस ब्रजभावमयी रहनी से निष्ठापूर्वक ब्रजवास करने से अतिशीघ्र ही परम करुणामयी सरकार श्रीराधिकारानी की सहज कृपा हो जाती है |

'अनन्यता' में सबसे पहली 'सावधानी व पहिचान' है – जब हम 'राम ही राम' कहेंगे, 'कृष्ण' नहीं कहेंगे और लड़ुआ के लिये छाती अड़ा रहे हैं तो अनन्य कहाँ हैं? लड़ुआफोर हैं | अनन्य वह है कि यहाँ से ब्रह्मलोक तक की वस्तुओं की कभी इच्छा ही न हो |

केवल 'विशुद्ध भक्ति-प्राप्ति' का ही परम लक्ष्य बनाकर निष्काम भाव से 'कथा-कीर्तन' के कहने-सुनने वाले संसार के सबसे बड़े 'दाता' हैं |

ब्रज-वसुंधरा के परम प्रेमाराधक संत

लेखक – श्रीसखीशरणजीमहाराज (दिसम्बर २०१३)

श्रीरमेशबाबाजीमहाराज

'श्रीधाम बरसाना-गह्वरवन, ब्रज-वृन्दावन में जो सदा जय को प्राप्त हो रहे हैं' सर्वदा नमस्कारपूर्वक शरण ग्रहण करता हूँ | श्रीराधानिकुँजविहारी सदा जिसमें क्रीडापरायण रहते हैं, उस निकुँज-धाम को प्रणाम | 'श्रीराधामानविहारीलाल' श्रीबाबामहाराज को कोटिशः प्रणाम .....|

जिस प्रकार प्रत्येक युग में एक या अनेक श्रीहरि के अवतार हुआ करते हैं, उसी प्रकार महापुरुषावतार, भक्तावतार भी समय-समय पर होते रहते हैं | महापुरुष कई प्रकार के होते हैं, जैसे - महात्मा गाँधीजी महापुरुष थे, जिन्होंने स्वदेश स्वतन्त्र कराने में अपने जीवन को भी न्यौछावर कर दिया था; इसी प्रकार और भी बड़े-बड़े महापुरुष लोकहितैषिता में समर्पित हुए | श्रीसूरदासजी, श्रीमीराबाईजी, श्रीनरसीजी, गोस्वामी तुलसीदासजी, श्रीकबीरदासजी आदि आध्यात्मिक महापुरुष हुए | रामावतार तथा कृष्णावतार के पश्चात् सैकड़ों व हजारों महापुरुषावतार हुये जो श्रीनाभाजी कृत भक्तमाल में वर्णित हैं |

'श्रीबाबामहाराज' मानमंदिर गह्वरवन श्रीधाम बरसाना में विराजमान हैं, यह एक बहुत बड़ा महापुरुषावतार है |

हर कृष्णावतार के पश्चात् महापुरुषावतार की भी श्रृंखला लगी रहती है |

'बाबाश्री' का जन्म सन् १९३७ ई. पौष कृष्ण षष्ठी को प्रयागराज (इलाहाबाद) में हुआ | श्रीबाबा की माताजी के कथनानुसार 'बाबा रमेश' श्रीरामेश्वर शंकर भगवान् के द्वारा प्रदत्त किए गए | माता- पिता ने रामेश्वर जाकर पूजा-अर्चना की, तब श्रीबाबामहाराज का जन्म हुआ | शिवजी के दिये हुये 'श्रीबाबा' बहुत बड़ी आत्मा हैं |

श्रीबाबामहाराज की दीदीजी कानपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थीं | उस समय श्रीबाबामहाराज इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे, कभी-कभी दीदीजी से कानपुर में मिलने आते थे |

एक बार 'श्रीबाबामहाराज' कानपुर सेन्ट्रल स्टेशन पर बैठे थे, ब्रजभूमि के एक संतजी मिल गए , बाबाश्री ने प्रणाम किया और पूछा कि महाराज ! क्या हमें भी कभी ब्रजवास मिल सकता है ? संतजी ने कहा – "अवश्य मिल सकता है" | श्रीबाबा ने कहा – "परन्तु मैं अपने माता-पिता का इकलौता लड़का हूँ, फिर मुझे ब्रजवास कैसे मिल सकता है"? श्रीसंतजी ने कहा – "ब्रजवास मिले या न मिले परन्तु तुम प्रतिदिन १० या ५ बार कहा करो 'मैं ब्रजवास करूँगा' |"

श्रीबाबामहाराज यह नियम प्रतिदिन करने लगे | (परिणाम हुआ कि आगे चलकर उन्हें अखण्ड ब्रजवास की प्राप्ति हो गयी)

'श्रीबाबा' माताजी के बहुत लाड़ले अकेले पुत्र थे, पिताजी का नाम 'श्रीबलदेवप्रसादजी शुक्ल' था, जो पुलिस विभाग में आई.जी.ऑफिसर थे, जिन्होंने अंग्रेजीकाल में 'सुल्ताना डाकू' को पकड़ा था | बाबाश्री के बाल्यकाल में ही 'पिताजी' दिवंगत हो गए थे |

'श्रीबाबामहाराज' कभी-कभी प्रयाग से प्रतापगढ़ ट्रेन से जाते थे और मनगढ़ में श्रीकृपालुजीमहाराज के सत्संग-संकीर्तन में भाग लेते थे, जिसमें आप अध्यात्म व भगवच्चर्चा-संबंधी अच्छा प्रवचन करते थे, जिसे सुनकर सभी लोग आकृष्ट व मुग्ध हो जाते थे |

श्रीबाबामहाराज ने 'यूनिवर्सिटी प्रयाग' से अन्य शिक्षाओं के साथ-साथ संगीत-शास्त्र की भी शिक्षा प्राप्त की, उन्हें संगीत-शास्त्र का बहुत अच्छा ज्ञान था | श्रीबाबा के संगीत गायन-वादन से बहुत लोग प्रभावित हुये |

इसके पश्चात् लगभग १५ वर्ष की आयु में 'श्रीबाबामहाराज' प्रयाग छोड़कर संत-वेष में चित्रकूट चले गये, वहाँ घोर जंगल में संतों के आश्रमों में रहकर यत्र-तत्र विचरण करते रहते थे | एक बार एक जंगली

हिंसक जानवर घनघोर वन में 'श्रीबाबा' पर बार-बार आक्रमण करता था, बाबामहाराज 'श्रीराधे-राधे' नाम उच्च स्वर से बोलते थे, वह दूर भाग जाता था; परन्तु पुनः आकर आक्रमण करता था, महाराजश्री 'राधे-राधे' जोर से पुकारते थे, वह पुनः दूर भाग जाता था | अंत में जंगल में घुस गया, फिर नहीं दिखाई पड़ा |

श्रीबाबामहाराज घोर जंगल में पर्वत के ऊपर एक संतजी की कुटी के पास वृक्ष के नीचे संतजी को प्रणाम कर बैठ गये | संतजी ने कहा – "यह घोर जंगल है, यहाँ सिंह, बाघ, रीछ रहते हैं, यहाँ झरने में पानी पीने आते हैं |" श्री बाबा महाराज को (महात्माजी ने) काफी रोटियाँ दीं, कहा – "खा लो, झरने का पानी पी लो, सब भोजन हजम हो जाएगा, पानी बहुत अच्छा है, सवेरे फिर भूख लगेगी |"

श्री बाबा महाराज ने कहा –"महाराज जी ! शेर गरज रहा है |" महात्मा ने कहा – "शेर गरज नहीं रहा है, मठार रहा है, उसकी गर्जना कोसों दूर तक सुनायी पड़ती है, इसलिए तलवार हाथ में ले लो, जब शेर आवे तब उसके पेट में तलवार घुसेड़ (घुसा) देना, डरना नहीं" |

श्रीबाबामहाराज वहीं बैठकर कीर्तन करने लगे | महात्माजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले – "बेटा ! तुम्हें डर नहीं लगता |" श्री बाबा महाराज ने कहा – "यह शरीर तो श्रीकृष्ण को समर्पित है, मुझे डर नहीं लगता, मैं शेर से तलवार द्वारा लड़ूँगा |" महात्माजी हँसने लगे, कहा –"तुम शूरवीर मालूम पड़ते हो, ऐसा ही व्यक्ति जंगल में भजन कर सकता है | अब कुटिया के अन्दर आ जाओ, शेर के आने का समय हो गया है" |

एक बार श्रीबाबामहाराज आँख बंद करके श्रीजी का ध्यान करते हुये जंगल में जा रहे थे, अचानक आँख खुल गई, आगे एक भयंकर बहुत चौड़ा और गहरा अन्धकार युक्त कुँआ (विराध राक्षस के रहने का कुँआ) था, उसमें बहुत से जीव बोल रहे थे | श्रीजी की कृपा से उस कुँआ में गिरने से आप बच गए....|

इसके पश्चात् श्रीबाबामहाराज ने ब्रजभूमि में आकर श्रीबरसाना धाम, गह्वरवन में निष्ठापूर्वक निवास कर सिद्ध संत श्रीप्रियाशरणजी महाराज की परम पावन सन्निधि में भक्ति-शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करते हुए ब्रज की रहनी सीखी | श्रीबड़ेबाबा (श्रीप्रियाशरणजीमहाराज) ने कभी किसी को दीक्षा देकर शिष्य नहीं बनाया, बाबाश्री मन से आपको ही सद्गुरुदेव मानने लगे, आपकी ही विशेष कृपा से बाबाश्री को श्रीबरसाना धाम, गह्वरवन में अखण्डवास की प्रेरणा मिली | 'श्री बड़े बाबा महाराज' सारे ब्रजमण्डल में संतों के मुकुट थे, आपने ही श्रीबाबामहाराज को आचार्यों के ग्रन्थों का अध्ययन करवाया | श्री प्रबोधानन्द जी की वाणी 'श्रीवृन्दावनशतक' आदि संस्कृत के ग्रन्थों का भी अध्ययन करवाया और सारे ग्रन्थ भी श्रीबाबामहाराज को सौंप दिये, जो आज भी श्रीबाबामहाराज के ग्रन्थालय में सुरक्षित रखे हुए हैं |

बाबामहाराज श्रीजी के विरह में रोया करते थे | एक दिन श्रीबड़ेबाबा अचानक आ गये, बोले – "क्यों रोते हो ?

श्रीबाबामहाराज बोले – "बाबा ! श्रीजी के लिये रोता हूँ |"

श्री बड़े बाबा बोले –"मत रो, तुझे श्रीराधिकारानी ने बुलाया है | श्रीगह्वरवन का वास करो, गह्वरवन साक्षात् श्रीराधारानी की नित्य निकुँज-क्रीडास्थली है |"

मानमंदिर में श्रीबाबामहाराज 'श्रीजी की आराधना' में नित्य-निरन्तर साधनरत रहने लगे |

तत्पश्चात् मुझे (सखीशरण) भी सन् १९६२ में श्रीबाबामहाराज की सन्निधि प्राप्त हुई |

श्रीबाबामहाराज की माताजी और बड़ी बहन दीदीजी 'बाबा' के बिना बहुत दुःखी थीं | माताजी एक ब्राह्मण के पास गयीं, जिसे भैरव बाबा सिद्ध थे | माताजी ने फल, पुष्प और भेंट दी और कहा – "मेरा पढ़ा-लिखा इकलौता लड़का है, वह कहाँ है ? महाराज ! मैं बहुत दुःखी हूँ" |

भैरव-सिद्ध-ब्राह्मण ने मंत्र जपा, भैरव बाबा का आवाहन किया | भैरव बाबा ने माताजी के चरण स्पर्श किये और कहा – "माताजी ! तुम्हारा बेटा ऐसी जगह गया है, वहाँ से ले आने की मेरी गति, सामर्थ्य नहीं है | दूसरी जगह होता तो तुम्हारे बेटा को मैं लाकर तुम्हें मिला देता | तुम धन्य हो जो ऐसा बेटा तुम्हें मिला, जो दूसरों के लिए दुर्लभ

है, तुम सीधे ब्रज में बरसाने में जाओ, वहाँ तुम्हारा बेटा मेरे आशीर्वाद से अवश्य मिलेगा, लोगों से पूछ लेना, उसको वहाँ सभी जानते हैं |"

श्रीबाबामहाराज की माताजी

श्रीमाताजी पहले प्रयागराज (इलाहाबाद) से श्रीधाम बरसाना, गह्वरवन में आया करतीं थीं, ८ महीने गर्मी–बरसात में रहकर इलाहाबाद चली जाया करती थीं | श्रीबाबामहाराज के कहने से माताजी ने सदा के लिये इलाहाबाद जाना छोड़ दिया और बरसाना, गह्वरवन का अखण्ड वास किया | माताजी प्रतिदिन प्रातः स्नान करके ४ बजे भजन करने के लिये आसन पर बैठ जातीं थीं और ९ बजे आसन से उठकर एक हाथ से माला-जप करतीं और दूसरे हाथ से बुहारी लगाती थीं | तत्पश्चात् अपने हाथ से रसोई बनाती थीं | श्रीजी का दर्शन व गह्वरवन की परिक्रमा नित्य नियमपूर्वक करतीं थीं | गह्वरवन वासी सिद्ध महापुरुष श्री मौनी बाबा महाराज किसी से बोलते नहीं थे परन्तु माताजी से बोलते थे | एक दिन 'माताजी' मौनी बाबा के लिए खीर ले गयीं | मौनी बाबा एक कुत्ता को कटोरा में दलिया खिला रहे थे | माताजी से उसी कटोरा में खीर डालने को कहा | माताजी ने कहा – "कटोरा कुत्ता का जूठा है |" मौनी बाबा ने कहा – "माताजी ! यह ब्रज का कुत्ता है, हमसे अच्छा है |"

माताजी एकादशी और द्वादशी को प्रदोष व्रत करती थीं | शिवजी को हर त्रयोदशी को बिल्व-पत्र, मिष्ठान्न व फल अर्पण करतीं थीं |

'शिवजी-स्तोत्र पाठ' का उनका नित्य नियम था | 'हरे कृष्ण हरे राम' महामंत्र का जप निरन्तर चलता रहता था | एक बार मैंने देखा कि माताजी को बुखार बहुत तेज था | माला हाथ से गिर गयी थी परन्तु उनकी उँगलियाँ चल रहीं थीं मानो माला से जप कर रही हों |

माताजी सिद्ध महापुरुष थीं | श्रीबाबामहाराज ने भी एक बार कहा था – "मेरी माताजी सिद्ध हैं |"

महापुरुषों को पहिचानना कठिन है | महापुरुष की कृपा से या श्रीजी-ठाकुरजी की कृपा से ही महापुरुषों को जाना जा सकता है | "सोइ जानइ जेहि देहु जनाई |" जैसे भगवान् जब अवतार लेते हैं तब उनके माता-पिता भी कोई अवतारी ही होते हैं, उसी प्रकार महापुरुष के माता-पिता भी महापुरुष ही होते हैं | श्रीजी की कृपा से ही उनको जान सकते हैं | महाराजश्री के पिताजी ज्योतिष के विद्वान थे, उनकी स्वरचित ज्योतिष की पुस्तक भी मैंने देखी थी मान मंदिर में | श्रीबाबामहाराज के पिताश्री महायोगी पुरुष थे, जिनकी निरंतर २४ घंटे आराधना होती है, उन्हें योगी कहते हैं |

'माताजी' एक बार कह रहीं थीं श्रीबाबामहाराज के बारे में – पिताश्री ने कहा था कि मेरा बेटा एक दिन राजा होगा | आज 'श्रीबाबामहाराज' संतों में महाराजा हैं, यह प्रत्यक्ष है |

पं.बाबा श्रीरामकृष्णदासजीमहाराज

एक सन्त महापुरुष 'श्रीकृष्णदास' पूँछरी में गिर्राज-तलहटी की गुफा में रहते थे | किसी नवयुवक बालक ने श्रीकृष्णदासजी से दीक्षा ली | श्रीकृष्णदासजी ने कहा - "तू कुसुम-सरोवर ग्वाल-पोखरा के पास श्यामकुटी में जाकर 'पंडित बाबा श्रीरामकृष्णदासजी' की सेवा करना, वह बीमार हैं, तू मेरा नाम ले देना, तब सेवा स्वीकार करेंगे; वह किसी से सेवा नहीं लेते हैं, जब वह ठीक हो जायेंगे तब तुझे भगा देंगे | तू भागना नहीं, सेवा करना |" उस संत ने 'पं.बाबा' के पास जाकर कहा – "मैं श्रीकृष्णदास जी का शिष्य हूँ, गुरुजी ने आपकी सेवा करने के लिये भेजा है |" पण्डित बाबा ने कहा – "श्रीकृष्णदासजी ने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है, मुझे बुखार है |" वह सन्तजी 'पं. बाबा' की सारी सेवा सँभालते | दो-चार दिन बाद जब 'पं. बाबा' ठीक हो गये तो संतजी से कहा – "अब मैं ठीक हूँ, अब तू अपने गुरुजी के पास जा और उनकी सेवा करना | मुझे अब सेवा की जरूरत नहीं है |" यह कहकर अपनी गुफा का दरवाजा बंदकर भजन करने लगे | संतजी दिन भर वहीं लता के नीचे बाहर बैठे रहे | शाम को 'पं.बाबा' ने जब किवाड़ खोले, तब संतजी से कहा – "मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया, जाकर अपने गुरुजी की सेवा करो |"

संतजी ने कहा – "मैं तो श्रीगुरुदेव की आज्ञा पालन करूँगा, उन्होंने कहा है कि 'श्री पं. बाबा' की सेवा मत छोड़ना | अब आप ही बतायें मैं 'गुरुजी' की आज्ञा कैसे ठुकरा दूँ ?"

श्री पं. बाबा ने कहा – "बहुत चतुराई कर रहा है, अच्छा तो अब मेरे पास रहो |"

श्रीबड़ेबाबामहाराज (श्रीप्रियाशरणजी) १४ वर्ष की अवस्था में ब्रज में आये थे | निम्बार्क सम्प्रदाय से दीक्षा लेकर ग्वाल-पोखरा कुसुम-सरोवर के पास श्यामकुटी में श्री पं. बाबा श्रीश्री रामकृष्णदासजी महाराज की सन्निधि प्राप्त की |

'श्री पं.बाबा' ने श्री बड़े बाबा से कहा – "भजन करना है तो मधूकरी-भिक्षा करना पड़ेगा |" श्री बड़े बाबा ने कहा – "मैं भिक्षा करूँगा" | प्रथम दिन 'श्री पं. बाबा' ने श्री बड़े बाबा को मुखराई गाँव में भिक्षा-मधूकरी करने की शिक्षा दी |

श्री पं.बाबा ने श्री बड़े बाबा को आदेश दिया कि ब्रजवासी जैसी व जो कुछ भिक्षा दें, यह समझना चाहिये कि निकुँज से भिक्षा आ रही है, श्रीजी-ठाकुरजी भिक्षा दे रहे हैं, नाहीं (मना) मत करना | दूसरे दिन श्री बड़े बाबा अकेले भिक्षा के लिये गये तो पहले ही घर में एक छोटे-से ब्रजवासी बालक ने जूठे हाथों से ही रोटी माँ से लेकर उन्हें दे दी | श्री बड़े बाबा ने रोटी ले ली | भिक्षा करने के उपरान्त श्रीबड़ेबाबा 'श्री पं. बाबा' के पास जाकर रोने लगे |

'श्री पं. बाबा' श्री बड़े बाबा को गोद में बिठाकर पूछने लगे कि क्या किसी ने तुझको मारा है ?

श्री बड़े बाबा ने कहा – "किसी ने नहीं मारा | ब्रजवासी हमें जूठी रोटी देते हैं, मैं ऊँचे गोत्र का ब्राह्मण हूँ, जूठी रोटी नहीं खाऊँगा, मैं अब भिक्षा नहीं करूँगा |"

श्री पं. बाबा ने कहा – "भिक्षा नहीं करोगे तो भजन भी नहीं होगा | कल मैं तेरे साथ चलूँगा और जूठी रोटी देने वाले बालक को हमें दिखाना |" दूसरे दिन श्री पंडित बाबा स्वयं श्री बड़े बाबा के साथ मुखराई गाँव गये, वहाँ श्री बड़े बाबा ने 'श्री पंडित बाबा' को एक घर में दिखाया कि इस बालक ने जूठी रोटी दी थी | श्री पंडित बाबा बोले – "अच्छी प्रकार देखो..."| श्री बड़े बाबा ने कहा – "बाबा ! ये लड़का तो ठाकुरजी है |" श्री पंडित बाबा ने कहा – "बोलो, ठाकुरजी के हाथ की जूठी रोटी नहीं खाओगे तो फिर किसके हाथ की खाओगे | निकुँज में श्रीजी और ठाकुरजी तथा श्रीजी की सहचरियाँ ही तो रहती हैं |" श्री बड़े बाबा ने कहा - "भूल हो गई, अब तो मैं रोज जूठी रोटी खाऊँगा" |

श्री बड़े बाबा 'श्री पंडित बाबा' के आदेश से प्रातः ४ बजे से श्रीगिरिराज-तलहटी में एक छतरी में भजन के लिए बैठ जाते थे और शाम तक भजन करते थे, फिर मुखराई मधूकरी-भिक्षा के लिए जाते थे | एक छोटी घड़िया में जल रख लेते थे और दिन भर छतरी में माला-जप करते थे, ग्वालबाल आते और श्री बड़े बाबा की घड़िया का जल पी लेते थे | श्रीबड़ेबाबा ने 'श्री पंडित बाबा' से कहा –"घड़िया का सारा जल ग्वालबाल माँगकर पी जाते हैं, मैं प्यासा बैठा रहता हूँ |" श्री पंडित बाबा ने कहा - "करवा में जल ले जाया करो, घड़िया में मत ले जाया करो | पानी माँगे तो पिला दो, नहीं देने पर अपराध लगेगा" | दूसरे दिन श्री बड़े बाबा करवा में पानी ले गए | ग्वालबाल पानी माँगने लगे | एक ग्वालबाल ने सब ग्वालबालों से कहा – "बाबा के करवा में थोड़ा पानी है | बाबा दिन भर प्यासा रहेगा, चलो हम सब लोग प्याऊ पर पानी पीवेंगे" |

एक बार 'दो भक्त' बंगाल से ब्रज के लिए चले, एक भक्त 'नाम-जप- प्रेमी' व दूसरा भक्त 'नाम-संकीर्तन-प्रेमी' था | 'संकीर्तन-प्रेमी भक्त' एक संकीर्तन-भक्त-समूह में कीर्तन करने लगे | नाम-जप-प्रेमी ने श्रीवृन्दावन में आकर श्रीपंडितबाबा के पास शरण-सन्निधि प्राप्त की | दैवयोगवश श्रीजी की इच्छा से 'संकीर्तन-प्रेमी भक्त' भी श्यामकुटी में श्री पं.बाबा की शरण में रहने लगे | सभी संत-भक्तजन अलग-अलग स्थानों पर दिन भर भजन करते थे और शाम को मधूकरी के पश्चात् श्री पं. बाबा को प्रणाम करते थे | एक सन्तजी का नाम गौरांगदास था तथा दूसरे संतजी का नाम कृपासिन्धुदास था | सभी संतजन

४ बजे भजन पर बैठ जाते थे और शाम को मधूकरी ले आते थे |

एक बार श्री बड़े बाबा ने 'श्री पं. बाबा' से कहा – "आज तीन दिन हो गये परन्तु कृपासिन्धुदासजी आपके पास नहीं आये" | श्रीपं.बाबा ने कहा – "जाओ, देखो कृपासिन्धु बीमार तो नहीं है" |

श्री बड़े बाबा व गौरांगदासजी उनकी कुटिया में गये... और श्रीपं.बाबा को बताया कि कुटिया अन्दर से बन्द है परन्तु कुटिया में कोई नहीं है |

श्रीपं.बाबा ने वहाँ जाकर के किसी प्रकार कुटिया खोली...| कुटिया में कोई दिखाई नहीं दिया तो श्रीबड़ेबाबा ने आश्चर्यपूर्वक 'पण्डित बाबा' से पूछा कि बाबा ! कृपासिन्धुदास कहाँ गये ?

तब श्रीपं.बाबा ने कहा – "कृपासिन्धुदास को 'श्रीजी' सशरीर अपनी सहचरी बनाकर ले गयीं | देखो, उसकी लंगोटी गाँठ लगी ज्यों की त्यों आसन पर रखी है" |

श्रीबाबामहाराज ने भी इस घटना की आंशिक चर्चा कई बार की है, सत्संग में कहा है कि मल-मूत्र का शरीर भी चिन्मय बनाकर 'श्रीजी' अपने धाम में ले जाती हैं |

'श्री बड़े बाबा महाराज' ने ३० वर्षों तक गिर्राज-तलहटी में अखण्ड भजनाराधना की; प्रातः ४ बजे से बैठ जाते थे, केवल करवा भर जल ले जाते थे | शाम को मुखराई में भिक्षा करते और तब प्रसाद लेते थे |

श्री बड़े बाबा ने एक बार ब्रज के कुछ परम विरक्त और भजनानंदी संतों का दर्शन कराकर श्रीबाबामहाराज से कहा कि इन संतों के दर्शन कर लो, अब ऐसे महापुरुषों के दर्शन आगे नहीं होंगे |

श्री पं.बाबा के पास में एक वल्लभकुल के गोसाँईजी दर्शन के लिये पहुँचे, प्रणाम के पश्चात् गुसांई जी ने श्री पं. बाबा से पूछा – "क्या आपकी तरह मैं भी यहाँ वैराग्य लेकर भजन कर सकता हूँ ?" श्री पं. बाबा ने कहा – "विधाता ने आपके माथे पर वैराग्य की कलम नहीं चलाई है, क्योंकि आपके लाखों शिष्य हैं, सब आपको भगवान् मानते हैं, हम भी आपको भगवान् मानते हैं | आपके पास अपार सम्पत्ति है, उस सम्पत्ति, यश, सम्मान को आप नहीं छोड़ सकते, नहीं तो आप यहीं बैठकर भजन कीजिये, मत जाइये, परन्तु ऐसा होना असम्भव है" | गुसाईं जी ने कहा –"आप ठीक कहते हैं, असम्भव नहीं, अत्यन्त असम्भव है" |

'श्री पं.बाबा' के पास सन् १९२९ में महात्मा गाँधी जी व सरदार वल्लभभाई पटेल आये और रोने लगे तथा कहा –"हमारे नेताओं का आन्दोलन १५० वर्षों से चल रहा है, हमारा भारत स्वतन्त्र क्यों नहीं हो रहा है ?"

श्री पं.बाबा ने कहा –"जिस आन्दोलन में भगवन्नाम नहीं है, वह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता, आप नाम संकीर्तन कीजिये, आन्दोलन सफल होगा |"

गाँधीजी ने वहीं पर 'नाम-संकीर्तन' का संकल्प लिया, वल्लभभाई पटेलजी ने श्रीगिर्राजजी की तलहटी में फुलवारी-बगीचे लगाने की सेवा का संकल्प किया |

गाँधीजी **"रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम" -** इस प्रकार भगवन्नाम का संकीर्तन प्रतिदिन करते थे | भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात् सरदार वल्लभभाई पटेलजी ने गोवर्द्धन से पूंछरी तक गोवर्द्धन पर्वत के दोनों ओर पेड़-पौधों के बगीचे तैयार किये परन्तु बाद में उनका शरीरान्त होने से गोवर्द्धन से लेकर राधाकुण्ड तक दोनों ओर बगीचों की सेवा रुक गयी |

बड़े बाबा श्रीप्रियाशरणजी महाराज

'श्री पं. बाबा महाराज' के लीला में पधारने के पश्चात् श्रीप्रियाशरणजी महाराज श्रीधाम बरसाना में रहने लगे | चिकसौली गाँव का बिरजू नामक नाई 'श्री बड़े बाबा' के हर आठवें दिन बाल बनाया करता था | हरगूलाल सेठ ने श्रीबड़ेबाबा से उनकी सेवा करने की प्रार्थना की; श्री बड़े बाबा ने अपनी सारी सेवा उसे दे दी |

श्री बड़े बाबा जहाँ-जहाँ रहते थे, सेठ के कर्मचारी वहाँ-वहाँ श्रीबड़ेबाबा की सारी सेवा सँभालते थे | वे श्री बरसाना, प्रेम-सरोवर, हड़िया वन, सेवार, पिसाया के वनों में, वृन्दावन, गोवर्धन में हर जगह कई-कई महीने रहते थे | पिसाया के वन से 'श्रीबड़ेबाबा' दौड़ लगा कर

बरसाना आते थे और साँकरी खोर, गह्वरकुण्ड, श्रीबैठकजी के पास रासमण्डल पर, दानगढ़ पर हर जगह थोड़ी देर बैठकर भजन करते थे, माला आपकी निरन्तर चलती रहती थी | तत्पश्चात् श्रीजी के दर्शन करके दौड़ लगाकर श्रीनंदगाँव में लाला के दर्शन कर पुनः दौड़ लगाकर पिसाया की वनी (झाड़ियों) से होते हुए कुटिया में पहुँच जाते थे | एक बार 'श्रीबड़ेबाबा' दौड़ लगाते हुये बरसाना के बाहर बम्बे (नाले की ओर) से आ रहे थे, तो एक ब्रजवासी बालक बोला - "हरगूलाल को बिजार (साँड़) भागो जा रहो है |"

श्री बड़े बाबा ने उस लड़के को बुलाया – "लाला, यहाँ आ जा |" लड़का बोला – "बाबा ! मैं नहीं आऊँगो, तोकूँ मैंने हरगूलाल कौ बिजार कह दियौ है | अब तू मोकूँ मारैगो |"

श्री बड़े बाबा बोले – "नहीं मारूँगो, प्यार करूँगो |"

वह बालक पास में आ गया | श्री बड़े बाबा ने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा – "लाला ! तू ठीक कह रह्यो है, हरगूलाल ने मुझको बादाम आदि खिलाकर के खूब मोटा कर दिया है परन्तु उसको मैं छोड़ूँगा |"

एक बार 'श्रीबड़ेबाबामहाराज' श्रीवृन्दावन में बाँकेबिहारीजी की बगीची में हरगूलाल की हवेली में रह रहे थे | कुछ बरसाने के २०-२५ ब्रजवासी श्रीगोपीचन्द गुसाईंजी के साथ गये, श्री बड़े बाबा महाराज के दर्शन कर प्रणाम करके बैठ गये | श्री बड़े बाबा ने रसोइया को बरसाने के ब्रजवासियों को पंगत में भोजन कराने के लिए आज्ञा दी | हरगूलाल सेठ ने रसोइया से कहा – "बड़े बाबा ने ब्रजवासियों को मुँह लगा रखा है | जो कोई ब्रजवासी आवे, उसको पंगत में बिठा देते हैं |" रसोइया ने श्री बड़े बाबा से शिकायत कर दी – 'या सेठ की बुद्धि नष्ट हो गई है जो आपके लिए कह रहा है कि बड़े बाबा ने ब्रजवासियों को मुँह लगा रखा है, पंगत में बिठा देते हैं |"

श्री बड़े बाबा ने रसोइया के मस्तक पर हाथ फेरा और हरगूलाल को बुलवाया | हरगूलाल के दिये हुये सभी वस्त्र उतारकर तखत पर रख दिये और कहा – "लाला हरगूलाल", उसने कहा – "हाँ बाबा !"

बड़े बाबा बोले – "यह ३० वर्ष पुरानी लंगोटी पहनता हूँ और ये जलपात्र (करवा) ३० वर्ष पुराना लेकर 'बरसाना' जा रहा हूँ, तेरा कुछ भी नहीं ले जा रहा हूँ |"

हरगूलाल 'बड़े बाबा' के चरणों में पड़कर रोने लगा - "बाबा ! कोई गलती हो गई मुझसे" |

श्री बड़े बाबा ने कहा – "जब तू ब्रजवासियों की सेवा नहीं कर सकता, ब्रजवासियों से प्रेम नहीं है, तेरी सेवा मुझे स्वीकार नहीं है" | ऐसा कहकर श्री बड़े बाबा महाराज 'बरसाने' में आ गये |

आत्म-कथा (श्रीसखीशरणजी) -

मैं श्रीजी की कृपा से सन् १९६१ में 'श्रीधाम वृन्दावन' में आया | मुझे 'रासलीला' बहुत अच्छी लगती थी | नित्य रासलीला देखा करता था | मैंने विचार किया कि यहाँ ब्रजमंडल में श्रीराधारानी-श्रीश्यामसुन्दर, गोपी-ग्वालवालों के साथ क्रीडा करते रहते हैं, उन श्रीराधामाधव के दर्शन बड़े दुर्लभ हैं, परन्तु अनेकों सिद्ध संत भी हैं जो दिन-रात श्रीयुगलसरकार का दर्शन करते हैं और उनकी गोद में श्रीराधामाधव बैठते हैं, ऐसे सिद्ध महापुरुष खोजने से कभी मिल सकते हैं...!! मैं उन महापुरुष के निकट कहीं लता-वृक्षों के नीचे रह लूँगा और सिद्ध संत-महापुरुषों के नित्य दर्शन ही कर लिया करूँगा, ऐसे सिद्ध संतजनों की सेवा तो हमें कहाँ मिलेगी ? केवल दर्शन ही कर लिया करूँगा | मैं चुपचाप सिद्ध संतों को सारे ब्रज में घूम-घूम कर ढूँढ़ा करता था | कभी वृन्दावन, कभी मथुरा, श्रीगोकुल, दाऊजी, गोवर्द्धन, श्रीबरसाना-गह्वरवन, पीरीपोखर, भानोखर, मानमंदिर, मोरकुटी, साँकरीखोर, विलासगढ़, नंदगाँव इत्यादि लीलास्थलियों में पदयात्रा करते हुए घूमा करता था | अनेकों बार घूमे परन्तु सिद्ध संतों के दर्शन नहीं हुए |

मानमंदिर की छत पर भी थोड़ी देर बैठता था | बड़े कुँआ के पास संत श्रीगोपालदासजी के पास थोड़ी देर बैठता था, मुझे शान्ति मिलती थी | कुण्ड के पास मौनी बाबा के भी दर्शन करता था, पुनः वृन्दावन चला जाता था |

एक बार मैं श्रीवृन्दावन से गोवर्द्धन होकर श्रीधाम बरसाना पदयात्रा करता हुआ आ रहा था | पहले हजारों लोग पदयात्रा ही करते थे | सवेरे व शाम को एक 'बस' बरसाने से मथुरा जाती थी, गाड़ियों का अभाव था | एक व्यक्ति बरसाना से गोवर्द्धन पैदल आ रहे थे | मैंने उनसे पूछा – आप कितने दिन से ब्रज में आ रहे हैं ? उन्होंने बताया ३० वर्ष से आ रहा हूँ | मैंने पूछा – "यहाँ ब्रज में कोई सिद्ध संत भी रहते हैं क्या ?" उन्होंने कहा – "हजारों सिद्ध संत रहते हैं, ब्रज तो सिद्ध महात्माओं का गढ़ है" |

मैंने कहा – "मुझे भी ऐसे महापुरुषों के नाम बताइये ?" उन्होंने कहा – "श्रीप्रियाशरणदासजी महाराज, फिर श्रीबाबामहाराज का नाम, वृन्दावनदासजी, तपसी बाबा, पं.गयाप्रसादजी, टटिया स्थान के महन्त जी" |

मैंने डायरी में नाम नोट किया, इन संतों के नाम लिखे परन्तु स्थान नहीं लिखे | केवल टटिया स्थान के महन्तजी के दर्शन किये | मुझे श्रीवृन्दावन में रासलीला देखने में बहुत आनन्द मिलता था | कुछ टूटी-फूटी सेवा रासमण्डली में कर देता था, इसलिए कई मण्डलियों के ब्रजवासी मुझसे प्रसन्न रहते थे | चिकसौली की रासमण्डली के स्वामी मुरारीलालजी ने मुझसे कहा कि मेरे गुरुदेव बाबामहाराज ने तुझे बरसाना, गह्वरवन में बुलाया है | मैंने कहा –"वह मुझे क्या जानें ?"

स्वामीजी ने कहा – "वह सब कुछ जानते हैं, सिद्ध सन्त हैं |" मैंने कहा - "सिद्ध संत-महापुरुषों से मुझे मिलाओ, मैं जीवन भर अहसान मानूँगा | मैं सिद्ध महात्माओं को ब्रज में ढूँढ़ता रहता हूँ" | मन में विचार किया सेवा तो मुझे कहाँ मिलेगी ? वहीं रहूँगा लताओं के नीचे, कभी-कभी दर्शन तो अवश्य हो जाया करेंगे |

गह्वरवन में 'श्रीबाबामहाराज' के दर्शन करने मात्र से मेरी कामना पूर्ण हो गई |

श्रीबाबामहाराज ने कहा – "सखीशरण, रासधारियों के बक्से वृन्दावन में ढोता रहता है, 'गह्वरवन' में रहकर भजन कर, जा लता-पतन में सो जाना" |

बाबाश्री की आशीर्वादात्मक-वाणी सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई | (मैं 'वृन्दावन' में लताओं-वृक्षों के नीचे सोता था |) कुछ ही समय बाद वर्षा होने लगी, मैं साँकरीखोर की छतरी में बैठ गया और विचार किया यहाँ साँकरीखोर में गोपियों से दूध, दही, माखन-मिश्री का दान माँगते हैं ठाकुरजी तो हमें भी ठाकुरजी का दर्शन हो जाएगा | रात भर बैठा रहा दर्शन नहीं हुआ | श्रीबाबामहाराज को मैंने बताया कि वर्षा के कारण मैं साँकरीखोर की छतरी में चला गया था |

श्रीबाबामहाराज ने कहा – "बहुत अच्छा किया" |

'अनन्यता' माने ये नहीं होता है कि हम 'रामानन्दी' हैं तो 'राम-राम' ही कहेंगे, 'कृष्ण' नहीं कहेंगे और 'कृष्णानन्दी' हैं तो 'कृष्ण-कृष्ण' ही कहेंगे, 'राम' नहीं कहेंगे...|